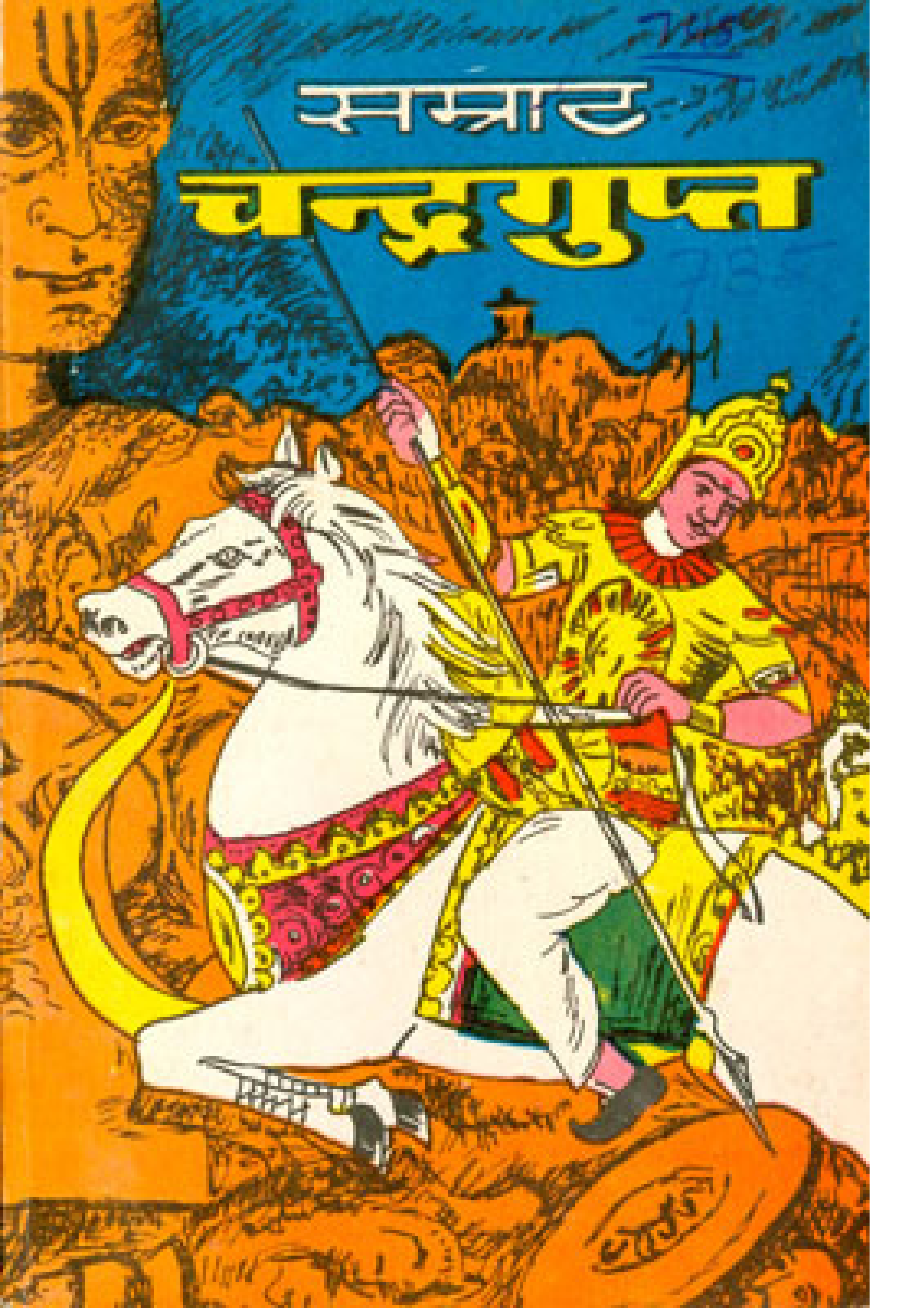
सम्राट
चन्द्रगुप्त

लेखक परिचय

पं० दीनदयाल उपाध्याय का जन्म अत्यंत साधारण परिवार में २५ सितम्बर १९१६ को हुआ था। आप मथुरा जिले के एक छोटे से गाँव नगला चन्द्रभान के निवासी थे।

शैशवावस्था से ही दीनदयाल जी को अनेक कष्टों में से गुजरना पड़ा। अभी वे तीन वर्ष के ही थे कि इनके पिता श्री भगवतीप्रसाद जी का स्वर्गवास हो गया। विवश होकर इन्हें अपनी माता रामप्यारी जी एवं नन्हें से छोटे भाई शिवदयाल के साथ अपने मामा श्री राधारमण जी के यहां जाना पड़ा। विपत्ति एक के बाद एक करके आती गई और सात साल की आयु होते-होते इनकी मां भी दोनों भाइयों को रोता-बिलखता छोड़कर चली गई। शैशवावस्था में अपने पिता को एवं बाल्यावस्था में अपनी माता को खोकर अभी दीनदयाल जी ने यौवन की सीढ़ी पर पांव रखा ही था कि उनका अनुज केवल १६ वर्ष की आयु में ही काल का ग्रास बन गया।

छात्र जीवन: यद्यपि दीनदयाल जी पर लगातार आपत्ति के पहाड़ टूटते रहे तो भी उन्होंने अपने अध्ययन की ओर से कभी दुर्लक्ष्य नहीं किया। प्रत्येक परीक्षा में वे अपनी विशेष प्रतिभा का परिचय देते रहे। प्राथमिक बोर्ड की परीक्षा में तो वे सर्वप्रथम थे ही, किन्तु हाईस्कूल में अजमेर बोर्ड की परीक्षा में उन्होने सभी रिकार्ड तोड़ दिये

उनकी रेखागणित की पुस्तिका कई वर्षों तक नमूने के तौर पर सुरक्षित रखी गई। इसी प्रकार पिलानी के बिड़ला कालेज में अध्ययन करके उन्होंने इण्टर की परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त किये। महाराजा सीकर एवं श्री घनश्यामदास बिड़ला दोनों ने ही उन्हें विशेष पुरस्कार एवं छात्रवृत्ति प्रदान की। बिड़ला जी व महाराजा दोनों उन्हें अपने यहां अच्छी नौकरी देना चाहते थे किन्तु दीनदयाल जी ने सनातन धर्म कालेज कानपुर जाकर गणित विषय लेकर बी०ए० की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। यद्यपि उन्होनें एम०ए० प्रथम वर्ष की परीक्षा में भी सेन्ट जांस कालेज आगरा के अंग्रेजी साहित्य के छात्र के रूप में प्रथम स्थान प्राप्त किया था तो भी दुर्भाग्यवश एम०ए० द्वितीय वर्ष की परीक्षा अपनी बीमार बहन की सेवा में रहने के कारण नहीं दे सके। अपनी मामी के आग्रह के कारण वे एक बार प्रशासनिक सेवा की प्रतियोगिता में भी शामिल हुए और उनका चुनाव भी हो गया किन्तु उन्होंने विदेशी सरकार की नौकरी न करने का ही निश्चय किया। कुछ समय पश्चात् उन्होंने बी०टी० का प्रशिक्षण प्राप्त किया।

कार्यकर्ता के रूप में: गरीबी के होते हुए भी दीनदयाल जी ने नौकरी न करके देश सेवा का ही व्रत लिया और वे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रचारक के रूप में देश सेवा कार्य करने निकल पड़े। थोड़े समय में ही उन्होंने अपनी स्वभावगत महानता और कार्य कुशलता के कारण सभी को प्रभावित किया। तीन वर्ष में ही वे उत्तर प्रदेश के सहप्रांत प्रचारक बना दिये गये।

साहित्यिक सेवाएँ : दीनदयाल जी प्रखर बुद्धि के धनी थे अतएव उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली में 'चन्द्रगुप्त' एवं 'जगद्गुरु शंकराचार्य'

नामक दो पुस्तकें लिखीं। विषय प्रतिपादन तथा शैली दोनों ही दृष्टि से ये पुस्तकें बहुत उत्तम हैं। आपने लखनऊ में ही राष्ट्रधर्म प्रकाशन नामक संस्था भी स्थापित की। 'राष्ट्रधर्म' मासिक 'पाञ्चजन्य' साप्ताहिक तथा 'स्वदेश' नामक दैनिक पत्र भी निकाले। आज भी 'राष्ट्रधर्म' एंव 'पाञ्चजन्य' अपने-अपने क्षेत्रों में विशिष्ट पत्रिकायें मानी जाती हैं। 'स्वदेश' नामक समाचार पत्र अब 'तरुण भारत' के नाम से प्रकाशित हो रहा है इन सभी पत्रिकाओं के मूल में दीनदयाल जी के गहन विचार एवं उनका सतत् परिश्रम ही है। उस काल में दीनदयाल जी ने इन पत्रों के सम्पादक, कम्पोजीटर, भारवाहक तथा कार्यालय के चपरासी का काम भी स्वयं किया।

दीनदयाल जी गम्भीर विचारक थे इसलिए उनके भाषण भी अत्यन्त सारगर्भित तथा मौलिक होते थे। उनके भाषणों के आधार पर कई पुस्तकें·संकलित करके प्रकाशित की गयी हैं, इनमें से प्रमुख हैं - भारतीय अर्थनीति ! विकास की एक दिशा, राष्ट्रजीवन की दिशा और अंग्रेजी की पोलिटिकल डायरी।

एकात्म मानववाद : भारतीय जीवन दर्शन को वर्तमान सन्दर्भ में प्रस्तुत कर सारे संसार को नवीन दिशा देने का कार्य दीनदयाल जी ने किया। सुख की दौड़ में सतत् दौड़ रहे मानव को दीनदयाल जी के एकात्म मानववाद से अवश्य ही स्फूर्ति एवं दिशा मिलेगी।

स्वर्गारोहण : यद्यपि पं० दीनदयाल जी इतने अच्छे स्वभाव के थे कि उन्हें अजातशत्रु कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी तो भी क्योंकि वे भारतीय राजनीति को भी एक विशेष दिशा में मोड़ देने के लिए प्रयत्नशील थे और उसमें उन्होंने बहुत सफलता भी प्राप्त

की थी, इसी राजनीतिक विचारधारा में उनके विरोधियों से उनका उभरता हुआ व्यक्तित्व नही सहा गया और एक दिन अर्थात् ११ फरवरी १९६८ की प्रातः मुगलसराय रेलवे यार्ड में उनका प्राणहीन शरीर पड़ा मिला। स्पष्ट था कि किसी दूषित षड्यन्त्र द्वारा कुछ नियोजित हत्यारों ने उनके सतत् गतिमान जीवन का सहसा अन्त कर दिया।

जिस समय दीनदयाल जी का शव पहचान लिया गया सम्पूर्ण विश्व में तुरन्त ही यह समाचार फैल गया। देश और विदेश के मनीषियों, नेताओं और विद्वानों ने अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की। किसी ने ठीक ही कहा है कि देश के गौरवशाली अतीत से भव्य भविष्य को जोड़ने वाला वर्तमान का महान शिल्पी चिरनिद्रा में सो गया। दीनदयाल जी का पार्थिव शरीर तो आज हमारे मध्य नहीं है, किन्तु उनका कर्म-शील जीवन, मधुर किन्तु सरल व्यवहार उनका गहन चिन्तन सदा ही सम्पूर्ण समाज को नई दिशा प्रदान करता रहेगा।

विषय प्रवेश

पुण्यमयी भारत भूमि की विशाल ऐतिहासिक परम्परा में वैभव और पराभव, उत्कर्ष और अपकर्ष के अनेक कालखण्ड मिलते हैं। उन्नति और अवनति दोनों ही में उसने अपनी राष्ट्रीय चेतना को जागृत रखा है। दोनों ही स्थितियों में अपनी आत्मा को बलवती बनाया है। पराभव प्राप्त होने पर उसने काल-चक्र की गति को भी बदलने वाले उन कर्मठ वीरों को जन्म दिया जिन्होंने अपनी मनस्विता, स्वाभिमान एवं नीति-निपुणता के द्वारा राष्ट्रीय आत्मा की सुप्त शक्ति को जगाया। यह शक्ति अन्याय और अत्याचार की भीषण आँधी में भी अपने स्थान पर शांत मुद्रा से डटी रही और अगस्त्य के समान कठिनाइयों के अलंघ्य विंध्याचल अतिक्रमण करके समुद्र जैसी उद्दंड एवं विशाल शक्ति को भी तीन ही चुल्लू में पान करने में समर्थ हुई। इसी प्रकार इनके वैभव और शांति के काल में वे ऋषि एवं तत्वज्ञ हुए जिन्होंने आत्मा की ईश्वरीय शक्ति का साक्षात्कार करके मानव के कल्याण के लिये सत्य सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। ऐसा ही एक कालखंड आज से २४०० वर्ष पूर्व हमको मिलता है। इसमें चन्द्रगुप्त और चाणक्य के सम्मिलित प्रयत्नों ने समाज की उस रचनात्मक शक्ति का सृजन किया जिसने न केवल अलिक्सुन्दर को ही भारत से निकाल बाहर किया अपितु एक विशाल सम्राज्य का भी निर्माण किया।

चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने कल्पना के मनोराज्य में जिस विशाल साम्राज्य का मानचित्र खींचा था उसे एक ने अपनी अजेय शक्ति तथा दूसरे ने अपनी असाधारण प्रतिभा के बल पर प्रत्यक्ष जगत में

प्रकट कर दिखाया। अलिक्सुन्दर के आक्रमण का भारत में प्रत्येक स्थान पर विरोध हुआ। देश में इतनी शक्ति थी कि वह पश्चिम के महान विजेता ? को पराभूत कर सकी ; परन्तु फिर भी भारत पूर्णतः शक्तिशाली नहीं था। समाज असंगठित, विश्रंखल, व्यक्तित्वनिष्ठ था। इन अवगुणों के कारण देश की बढ़ती हुई दुर्बलता चन्द्रगुप्त और चाणक्य से न छिप सकी क्येंकि वे थे देश की नाड़ी को पहिचानने वाले चतुर वैद्य। देश की आत्मा के साथ अपनी आत्मा को समरस करने के कारण इस दुर्बलता की वेदना को उन्होंने अनुभव किया। पर्वतक की विशाल शक्ति जिसने अलिक्सुन्दर के छक्के छुड़ा दिये और उसे मैत्री का हाथ बढ़ाने को विवश किया, तथा मगध का अजेय सैन्यबल जिसकी वीरता और शूरता की कहानियाँ सुनकर ही अलिक्सुन्दर की सेना हिम्मत हार बैठी, ये दोनों ही वास्तव में राष्ट्रीय दृष्टि से कितनी खोखली थीं यह चन्द्रगुप्त और चाणक्य जानते थे, इसलिए उन्होंने भारत के दौर्बल्य को दूर करके उसे शक्तिशाली बनाने का बीड़ा उठाया। भारत के सम्पूर्ण छोटे-बड़े राज्यों की विजय तथा भारत की सीमा से उसके शत्रुओं को पर्याप्त दूर रखने के लिये गान्धार (अफगानिस्तान), पारस, चीनी तुर्किस्तान, कुस्तान (खोतान.) आदि की विजय भारत को वैभव के शिखर पर पहुंचाने वाले शक्ति-सोपान की पहिली सीढ़ी थी। विजय के पश्चात् साम्राज्य में शांति एवं सुव्यवस्था निर्माण करना इस मार्ग की दूसरी सीढ़ी थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य इतना सुसंगठित तथा शासन इतना सुदृढ़ था कि विदेशी यवनों को भी उनकी प्रशंसा करनी पड़ी। उसके शासन काल की शांति व्यवस्था और सम्पन्नता का चित्र सेलेउक्

(सेल्यूकस) के दूत मेगस्थनीज के वर्णन के जो अंश उपलब्ध हैं उन्हीं के आधार पर खींचा जा सकता है। यथार्थ स्वरूप कितना भव्य होगा इसकी तो केवल कल्पना कर सकते हैं। चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलिपुत्र थी। इसका विस्तार गंगा के किनारे १५ मील था। राजधानी की विशालता, स्वच्छता एवं वैभव को देखकर ही साम्राज्य के वैभव का अनुमान लगाया जा सकता था। नगर में ४५० तो रत्न-खचित अट्टालिकायें ही थीं। फिर राज प्रासाद की शोभा और रत्नभंडार का तो कहना ही क्या! पण्यवीथिकाओं की स्वच्छता और सजावट अत्यन्त ही चित्ताकर्षक थी। छोटी-छोटी गलियों में भी स्वच्छता का समुचित प्रबन्ध था। पाटलिपुत्र उस समय के संसार का प्रमुख नगर था। वहाँ न केवल दूर के व्यापारी ही वाणिज्य-व्यवसाय के लिए आते थे अपितु संसार के सभी राज्यों के राजदूत भी चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में उपस्थित रहते थे।

अपने विशाल साम्राज्य का शासन करने के निमित्त चन्द्रगुप्त मौर्य ने उसे पाँच भागों में विभक्त कर रखा था। पूर्वी भाग का शासन तो राजधानी पाटलिपुत्र से ही होता था परंतु उत्तर में तक्षशिला और कौशाम्बी, मध्य भारत में उज्जयिनी तथा दक्षिण में महिशूर (मैसर) प्रतिनिधि-शासन के केन्द्र थे। प्रत्येक प्रांत तथा केन्द्र में शासन मंत्रियों की एक परिषद के द्वारा होता था। सम्राट स्वयं समय-समय पर साम्राज्य भर में दौरा करते थे। देश भर में स्थानीय शासन का भार ग्राम पंचायतों के ऊपर था। नगर में आज की भाँति ही स्थानीय शासन-संस्थायें (म्युनिसिपैलटियां) कार्य करती थीं। स्वच्छता पर इतना अधिक ध्यान दिया जाता था कि सड़कों पर गंदा पानी फैलाने वालों के लिए बड़े

कठिन दण्ड देने की व्यवस्था थी। नगर के समस्त गृह योजनानुसार बनवाये जाते थे तथा घर बनवाने के पहिले स्वास्थ्य अधिकारी की अनुमति प्राप्त कर लेना आवश्यक था। आज के छोटे बड़े नगरों की भांति पाटलिपुत्र घिचपिच नहीं बसा हुआ था।

भारत में कई बड़ी-बड़ी सड़कें मौर्य शासन में बनीं। उनके दोनों ओर छायादार वृक्ष लगवाये गये थे तथा थोड़ी-थोड़ी दूर पर यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशालायें और कुएँ बने हुए थे। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक वणिक्गण निर्भय होकर अपना सामान ले जाते थे। चोरी और डाके का भय पूर्णतः जाता रहा था। नगर में लोग घरों में ताले नहीं लगाते थे। इतना ही नहीं, किसी की चोरी होने पर राज कर्मचारी उसका पता न लगा सके तो राज्य-कोष से उसकी कमी पूरी कर दी जाती थी। सत्य तो यह है कि जब सब प्रकार की सुव्यवस्था और सम्पन्नता थी तब कोई चोरी जैसे गर्हित शास्त्र-निषिद्ध, लोकविघातक एवं लोकनिन्द्य कर्म की ओर प्रवृत्त ही क्यों होता।

राज्य में न्याय का समुचित प्रबन्ध था। न्याय और शासन विभाग का काम अलग-अलग अधिकारी देखते थे। न्याय के सामने सब समान थे। यहां तक कि राजपुत्र को भी, यदि वह दोषी हो तो, दण्ड दिया जाता था। समाज विघातक कार्यों के लिए तो बहुत कठिन दण्ड दिया जाता था। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य स्वयं न्याय करता था इसके लिये प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति सम्राट तक पहुंच सकता था।

ज्ञान और विद्या के प्रसार की ओर भी सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने विशेष ध्यान दिया था। तक्षशिला और नालन्दा के विश्वविद्यालय

तो चलते ही थे, परन्तु समाज और राष्ट्र के हित के प्रश्नों का निर्णय करने के लिये स्थान-स्थान पर परिषदें होती थीं ; उनमें विद्वानों को यथेष्ट रूप से पुरस्कृत किया जाता था। समाज में समष्टि जीवन की भावना राष्ट्र के जीवन का मूल है यह सम्राट चन्द्रगुप्त को विदित था। इसके लिये भिन्न-भिन्न प्रचार साधनों का उपयोग तो होता ही था। परन्तु कई बातों के लिये तो राज्य की ओर से विशेष नियम बने हुये थे। पड़ोस में आग लगने पर यह समष्टिगत कर्त्तव्य है कि उसको बुझाने में सहायता दी जाय। इस कर्त्तव्य की अवहेलना करने वाले को राज्य की ओर से कठिन दण्ड दिया जाता था। नगर तालाब आदि के सार्वजनिक उपयोग के कार्यों में भी सबको सहायता करनी होती थी। देश में इस प्रकार की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध था कि लोग व्यक्तिगत हितों के स्थान पर समाज के हितों को ही महत्व देते थे।

सम्राट चन्द्रगुप्त की शासन-व्यवस्था इतनी निर्दोष एवं पूर्ण थी कि पश्चिमी विद्वानों को भी उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करनी पड़ी है। प्रत्येक अच्छी बात का उद्‌गम यूरोप से मानने वालों को आश्चर्य होता है कि आज से चौबीस सौ वर्ष पूर्व मौर्य शासन इतना विकसित स्वरूप कैसे उपस्थित कर सका। आज के विज्ञान के आविष्कारों के न होते हुए भी सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने शासन की आधुनिकतम प्रणालियों का उपयोग किया। यदि हम इसका पूर्ण विवरण जानना चाहते हैं तो हमको सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य केप्रधानमंत्री, सहयोगी एवं गुरु विष्णुगुप्त कौटिल्य के अपूर्व ग्रन्थ अर्थशास्त्र को पढ़ना चाहिये। इसमें उन सब विषयों का वर्णन है जिनसे कोई भी राष्ट्र शक्तिशाली हो सकता है।

इसमें किसी तत्व वेत्ता की मनःसृष्टि के काल्पनिक सिद्धांत नहीं हैं किन्तु एक सूक्ष्मदर्शी ऋषि, यथार्थवादी विचारक तथा क्रान्तिकारी कर्मयोगी के विचार हैं ; राज्य के उत्थान-पतन के कारणों की विवेचना करके स्वयं राष्ट्र-निर्माण करने वाले कूटनीतिज्ञ तपस्वी के अनुभूत प्रयोग हैं ; मनोविज्ञान, राजनीति, अर्थनीति के वे सिद्धांत हैं जो व्यवहार की कसौटी पर कसे जा चुके हैं । एक विद्वान के अनुसार यह ग्रंथ उनकी ओर से देश को दिया हुआ अधिकार पत्र है ; हमारे लिए उपयोगी ज्ञान का भंडार है ।

वैसे तो भारत भूमि सदा ही सोना उगलती रही है परन्तु सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के काल की शांति और व्यवस्था के कारण तो यह भूमि सचमुच रत्नगर्भा हो गयी थी । चारों ओर सुख और सम्पन्नता का राज्य था । सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य एवं चाणक्य के राष्ट्रीय प्रयत्नों के फलस्वरूप ही भारत महती शक्ति का सम्पादन कर सका जिसके भरोसे सम्राट अशोक ने राष्ट्रीयता से आगे बढ़कर विश्व कल्याण के मार्ग पर पग बढ़ाया । इस राष्ट्र-शक्ति के निर्माता चन्द्रगुप्त और चाणक्य में से अपने भुजबल का आश्रय लेकर पराक्रम करने वाले तथा अन्त में इस शक्ति के केन्द्र स्वरूप संसार के सामने प्रकट होने वाले सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का यह पावन चरित्र है ।

० ०

वैभवशाली राज्य और विलासी राजा

जिस काल का वर्णन कर रहे हैं तब से अब तक पृथ्वी सूर्य के चारों ओर लगभग ढाई हजार चक्कर लगा चुकी है और उसी भांति भारत का भाग्यचक्र भी न मालूम कितनी बार घूम चुका है। उस समय मगध में महापद्म नन्दों का राज्य था । भारत स्वतंत्र था ; यहां का व्यापार खूब बढ़ा-चढ़ा था । यहां के बने हुए माल से देश-विदेश के बाजार पटे पड़े थे । हिन्दू शिल्पियों के हाथ में कुछ ऐसी सफाई थी, कुछ ऐसा जादू था कि जिस चीज को वे बनाते थे वही लोगों का मन मोह लेती थी। राजा भी वहां के कला-कौशल तथा व्यापार को खूब प्रोत्साहन देता था। क्यों न देता ? इससे लाभ तो उसके देश का और देशवासियों का ही होता था। इस बढ़े हुए व्यापार के कारण देश में खूब धन था। राजकोष भी भरा पड़ा था। राजा के पास महापद्म रुपया होने के कारण ही उसका नाम महापद्म पड़ा था । जरा उंगली पर इकाई गिन कर देखो तो और सोचो कि कितना होगा वह महापद्म रुपया ! आज अगर दुनिया के सब आदमियों में वह रुपया बाँटा जाय तो एक-एक आदमी के पास ५० लाख रुपया आयेगा और अकेले हिन्दुस्तान में ही बांटा जाय तो हममें से हर एक को २.५ करोड़ रुपया मिले ! ओह ! कितना होगा वह धन ! और कितने सुखी थे उस समय के स्वतंत्र हिंदुस्तान के लोग । आज तो हिन्दुस्तान में लखपति ही गिनती के हैं फिर करोड़पतियों का तो पूछना ही क्या ! बाकी तो हमारी साल भर की आमदनी कुल ५६ रु० है।

इस वैभवशाली मगधराज की राजधानी थी कुसुमपुर। यह वही

नगर है जो आज पटना कहलाता है। उस समय इसका नाम कुसुमपुर था। बाद में यहीं पाटलिपुत्र बसाया गया जो बाद में बिगड़कर पटना हो गया। कुसुमपुर वास्तव में कुसुमपुर ही था। जैसे भौंरे पुष्प की सुगन्ध से आकर्षित होकर उसके चारों ओर मंडराते रहते हैं, उसके यशज्ञान का गुंजन करते हैं, उसके गौरव के गीत गाते हैं, तथा कुसुम के मधु का पान करके अपनी इच्छा को तृप्त करते हैं, उसी प्रकार कुसुमपुर के वैभव तथा व्यापार के कारण दूर-दूर के यात्री और व्यापारी वहां आते थे, उनका सदा ही जमघट लगा रहता था। वहां के सौंदर्य को लखकर अपनी आँखों की तृप्त करते, वहां के व्यापार से अपनी कोष-वृद्धि करके अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते तथा जहाँ भी जाते वहीं कुसुमपुर की कला और इसके धन की कहानी अपने साथ ले जाते। देश-विदेश के राजदूत भी इस राजा के दरबार में उपस्थित होना अपना सौभाग्य समझते थे।

महापद्मनन्द के वंशज बड़ी अच्छी तरह से राज्य करते रहे। राजा होते हुए भी वे अपने आपको प्रजा का स्वामी न समझकर प्रजा का सेवक समझते थे। हमारे यहां राजा का यही आदर्श है। जब राजा ही प्रजा की भलाई करना और सेवा करना अपना कर्तव्य समझता था तो छोटे-छोटे कर्मचारी सदा प्रजा के हितों का ध्यान रखते थे। परन्तु यह दशा अधिक दिनों नहीं रही। नन्द वंश का अन्तिम राजा धनानन्द बड़ा ही विलासी हो गया। राजकाज में उसका मन बिल्कुल नहीं लगता था। वह अपना सारा समय नाचगान, आमोद, प्रमोद तथा रंगरेलियों में व्यतीत करता। कभी बसन्तोत्सव धूम-धाम से मनाने में रुपया पानी की तरह बहाया जाता तो कभी होलिकोत्सव पर प्रजा

का धन बुरी तरह फूंका जाता। राजा अपने को प्रजा के धन का मालिक समझने लगा था। ऐसे व्यसनी राजा को किसी की नेक सलाह भी अच्छी नहीं लगती है वह तो केवल खुशामदियों के ही वश में रहता है जो उसकी जी-हुजूरी करते रहते हैं।

सौभाग्य से इस राजा का मंत्री कात्यायन बहुत ही योग्य था। उसका उपनाम था राक्षस। वह केवल नाम से राक्षस था। वैसे तो ब्राह्मण था। बड़ा विद्वान था, नीतिनिपुण था तथा नन्द के राज्य को बड़ी कुशलता से सम्हाले हुए था। साथ ही वह अत्यन्त स्वामिभक्त एवं राजभक्त था। राजा नन्द के हाल देखकर उसको बड़ा ही दुःख होता था। वह चाहता था कि राजा राजकाज में ध्यान दें। परन्तु राजा नन्द तो अपने महलों से ही नहीं निकल पाता।

मन्त्री की इतनी योग्यता होते भी राजकाज में ध्यान न देने के कारण राज्य में चारों ओर गड़बड़ मच गयी। प्रजा दुःखी रहने लगी। प्रजारञ्जन के कारण ही राजा का राजा नाम पड़ा है। राजा नन्द तो प्रजारञ्जन के स्थान पर अपना ही मनोरञ्जन करता था। भगवान राम ने राजा का जो आदर्श रखा था तथा जिसको सब भारतीय नरेश और राजा धनानन्द के पूर्वज पालन करते आये थे उसको वह भूल गया।

० १- राम का आदर्श था लोकाराधन न कि लोकशासन। हां, इस प्रकार प्रजा की सेवा करने वाले राजा राम को प्रजा ने भी अपना स्वामी माना तथा उनकी भक्ति करना अपना सौभाग्य समझा। राजा नन्द ही जब प्रजा के लिए अच्छी भावना नहीं रखता **तो प्रजा में भी स्वभावतः उसके प्रति निष्ठा रखने वालों की कमी**

हो गई। उनके दुःखों को कोई भी सुनने वाला नहीं था। राजा धनानन्द तक न तो किसी की पहुंच ही थी और न उसको इतना अवकाश था कि वह अपना राग-रंग छोड़कर दुःख और दर्द की कहानियाँ सुने।

पूर्व-नन्दों के शासन-काल में प्रजा जिन अधिकारों का उपभोग कर चुकी थी, उनका अपहरण उसको खलने लगा। वह तो सुख, शांति और सम्मानपूर्ण जीवन बिताने की आदी थी। परन्तु नन्दराज्य में ये उसको दूभर होते जाते थे। अपने चारों ओर नन्द के विलासपूर्ण कृत्यों को देखकर प्रजा की नैतिक भावना को ठेस लगती थी, कहीं भी अत्याचार देखकर उसकी आत्मा विक्षुब्ध हो उठती थी। आत्मसम्मान की रक्षा करने वाले और उसको मिटाने वालों में स्वाभाविक ही संघर्ष छिड़ गया। जगह-जगह आकाश की ओर उठने वाले धुएँ ने बताया कि अन्दर आग सुलग रही है। इसी धूम्रपुञ्ज में से उठते हुए लोगों ने एक भव्य मूर्ति को देखा। यही है हमारा नायक चन्द्रगुप्त मौर्य।

० ०

: २ :

देश प्रेम या राजद्रोह ?

चन्द्रगुप्त मोरिय क्षत्रिय था। प्रारम्भ में यह जाति मोर पर्वत के आसपास रहती थी। चन्द्रगुप्त राजा नन्द के यहां एक साधारण सैनिक था, परन्तु वह था अत्यंत शूर एवं धीर। उसमें देशप्रेम कूट-कूट कर भरा था। अपने आसपास के लोगों में उसका बड़ा आदर था। उसके साथी उसको बड़ी श्रद्धा से देखते थे। उसने अस्त्रशस्त्रों के प्रयोग

में बड़ी निपुणता प्राप्त कर ली थी। विशेषकर धनुष-बाण और शूल में तो उसकी कोई भी बराबरी नहीं कर सकता था। उसके साथी उसके अचूक निशाने को देखकर उसे अर्जुन का अवतार कहते थे। परन्तु इन शस्त्रास्त्रों से भी बढ़कर उसके पास एक और बड़ी चीज थी और वह थी उसके हृदय की दृढ़ता, उसकी निर्भीकता, उसका आत्मविश्वास। जब अपने साथियों का ध्यान वह मगधराज्य के अत्याचारों की ओर खींचता तथा उनसे उसका विरोध करने को कहता तो वे कहते, "भैया चन्द्रगुप्त, तुम तो उनका विरोध कर सकते हो क्योंकि तुम्हारा शूल शत्रु के पेट की अंतड़ियों को भी खींचकर बाहर ला सकता है, तुम्हारा वार छिपे से छिपे शत्रु का भी सिर धड़ से अलग कर सकता है परन्तु हम क्या खाकर उनका विरोध करें ? हम में कहां है इतनी कुशलता?" तब चन्द्रगुप्त उनको यही बतलाता कि

o २- **शस्त्रों की ताकत से दिल की ताकत ज्यादा है। जिसमें आत्मविश्वास है वह दुनिया में सबसे अधिक शक्तिशाली है, हम अन्याय और अत्याचार सहन नहीं करेंगे, बस यही भावना हमारे हृदय में होनी चाहिए और यही सबसे बड़ी शक्ति है। मनुष्य निर्भीक तो हो, फिर उसे कौन सी शक्ति झुका सकेगी?**

एक दिन चन्द्रगुप्त और उसके साथी बैठे हुए बातचीत कर रहे थे, कोई आठ-दस तरुण एक वृद्ध को घेरे हुए थे। उनके गठे हुए शरीर और चौड़ी छाती को देखने से पता चलता था कि वे नित्य व्यायाम करते थे। राजा नन्द के विलास और अत्याचारों का परिणाम अभी तक प्रजा के आहार-विहार पर नहीं पड़ा था। उनका नैतिक आदर्श अभी भी ऊँचा था। दुर्बलता एक पाप समझी जाती थी।

इसलिये हर एक आदमी शक्तिशाली बनने की प्राणपण से कोशिश करता था। खाने-पीने की न तो किसी भी भाँति कमी थी और न कोई इसमें लोभ ही करता था।

इन सब तरुणों के बीच बैठा हुआ वृद्ध उनको पिछले राजाओं के समय का हाल बता रहा था। उसने उन्हें रघु की दिग्विजय का हाल बताया और फिर राम के राक्षसों के वध और रावण के विरुद्ध युद्ध का रहस्य बतलाया।

'तो क्या दादा आप समझते हैं कि यदि रावण सीता-हरण नहीं करता तो भी राम रावण से युद्ध करते ?' उनमें से एक ने पूछा।

'अवश्य करते बेटा ! उनका तो उद्देश्य ही भारतवर्ष से सब राक्षसों को, जो कि भारत की सभ्यता और धर्म को मिटाकर नष्ट कर देना चाहते थे, समूल उखाड़ फेंकना था। अगर रावण सीता को लौटा देता तो कोई और कारण युद्ध का ढूंढ़ना पड़ता। उन्हें तो चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करना था। बिना उसके देश कैसे सुख और शांति से रह सकता।'

'आज तो कोई चक्रवर्ती सम्राट नहीं है दादा !'

'नहीं बेटा ! आज कोई चक्रवर्ती सम्राट नहीं है ; इसीलिए तो सुना है कि अलिक्सुन्दर ने भारत पर चढ़ाई करने की सोची है। आज तक भारत पर आक्रमण करना तो दूर, कोई मन में इस बात का विचार भी न ला सकता था', यह कहते-कहते उस वृद्ध का गला रूंध गया और सूखी आँखों से भी अश्रु-बिंदु गिर गये।

दादा ! आज भारत में कई छोटे-छोटे राजा हैं, क्या वे आपस

में मिलकर अलिक्सुन्दर से नहीं लड़ेगे ?' विजयगुप्त ने कहा।

'क्यों, मिलेंगे क्यों नहीं?' विनयमित्र बोला। 'शत्रु के विरुद्ध तो सबको मिलकर लड़ना चाहिये।'

'अरे नहीं विनयमित्र! शत्रु उनसे एक साथ कहाँ लड़ेगा वह तो एक-एक से लड़ेगा। और यहाँ के राजा लोग यह कहां समझते हैं कि पड़ोसी के राज्य पर हमला है तो हम भी वहीं जाकर शत्रु का सामना करें। जो दुष्ट प्रकृति के हैं वे तो पड़ोसी पर आपत्ति आई देखकर प्रसन्न होंगे और जो जरा सज्जन हैं वे अपने राज्य को बचाने की चिन्ता करेंगे, परन्तु दूसरे की जाकर सहायता नहीं करेंगे' चन्द्रगुप्त ने कहा।

'एक और भी कठिनाई है चन्द्रगुप्त,' वृद्ध बोला, 'ये छोटे-छोटे राजा हैं एक दूसरे के बराबर, यदि वे मिलें तो नेता किसे बनावें। इतनी समझ उनमें कहां है कि ऐसे अवसर पर छोटे बड़े का ख्याल नहीं किया जाता। आज मगध का राज्य ही भारत में सबसे बड़ा राज्य है। वह यदि चाहे तो सब राजा उसके माण्डलिक बन जाएँ और फिर भारत में एकछत्र राज्य हो जाय। ऐसा राज्य ही अलिक्सुन्दर जैसे शत्रु का सामना कर सकता है और कोई नहीं।'

'फिर तो भारत की रक्षा की जिम्मेवारी मगध की है' , विश्वगुप्त बोला।

'हाँ मगध की ही' , वृद्ध ने दृढ़ता से कहा। 'पर हमारे महाराज को इतनी फुरसत कहाँ है ?' वृद्ध ने एक क्षण बाद ही ठंडी साँस लेते हुए कहा ?

‘ तब तो हम यूनानियों के गुलाम हो जायेंगे’ , वसुमित्र ने व्यग्रता से कहा। यह सुनते ही सबके चेहरे फक पड़ गये, हृदय धड़कने लगा और एकाएक सबके मुंह से निकल पड़ा ‘गुलाम.....! यूनानियों के ! ’

‘और इसलिये कि मगध के सिंहासन पर एक अकर्मण्य और विलासी राजा बैठा है !’ वृद्ध ने जोर देकर कहा।

चन्द्रगुप्त का हाथ एकदम तलवार की मूंठ पर गया मानों सामने ही यूनानी उनको गुलाम बनाने आ रहे हों, और वह उनसे लड़ने को उद्यत है। उसकी त्योरियां चढ़ गईं।

०-३‘**भारतवर्ष गुलाम ! नहीं कभी नहीं**’ , उसने सरोष पर दृढ़ता से कहा।

‘कभी नहीं’ , एक साथ आठ आवाजें गूंज गईं।

‘कभी नहीं ! पर कैसे ?’ वृद्ध ने स्मित हास्य के साथ पूछा। एक क्षण को सब चुप हो गये। मानों किसी गहरे विचार में पड़ गये हों। भारत के स्वातांत्र्य के महान उत्तरदायित्व का पहाड़ सा बोझ ! और धनानंद के निर्बल कंधे !! उन्होंने देखा कि वह उस बोझ को नहीं संभाल पा रहा है।

‘हम मगध का राजा ही बदल देंगे’ , अरिमर्दन ने एक ऐसे विजयगर्वित स्वर में कहा मानों उसने समस्या को हल ही कर दिया हो। सबने अरिमर्दन की ओर देखा। और फिर एक बार चारों ओर देखा। सबकी दृष्टि चन्द्रगुप्त पर ठहर गई।

'भैया चन्द्रगुप्त हमारे महाराज होंगे,' सब एकदम चिल्ला उठे। और दूसरे ही क्षण वह स्थान 'महाराज चन्द्रगुप्त की जय।' 'मगधेश चन्द्रगुप्त की जय !' के घोष से गूँज उठा। उस छोटे से दल ने एक ही क्षण में सैनिक चन्द्रगुप्त को महाराज चन्द्रगुप्त बना दिया। परन्तु वे यह नहीं जानते थे कि चन्द्रगुप्त को महाराज बनाना इतना सरल नहीं था। एकाएक अमात्य राक्षस अपने चार सहचरों के साथ जब वहां आ धमका तब उनको मालूम हुआ कि जयघोष के द्वारा अपने निश्चय की डौंडी पीटना उनके जीवन की सबसे बड़ी भूल हुई।

'यह मगधेश चन्द्रगुप्त कौन है सैनिकों ?' अमात्य राक्षस ने अधिकार एवं रोष भरे स्वर में पूछा 'महाराज चन्द्रगुप्त' घृणा के स्वर में उसने दूसरे ही क्षण कहा।

सब सैनिक एकदम भौंचक्के से रह गये। वे क्या उत्तर दें, उनकी समझ में नहीं आता था। शायद स्वयं महाराज नन्द उस समय आते तो वे उनका सामना करते ; उनको आनन्द ही होता कि उनके निश्चय की पूर्ति इतनी जल्दी हो सकी। आज ही, अभी चन्द्रगुप्त सच में महाराज चन्द्रगुप्त होते। पर यहां तो थे अमात्य राक्षस। उनसे वे क्या कहें। उनसे कहने की न तो उनकी हिम्मत ही थी और न बुद्धि ही सलाह देती थी कि उनका बाल भी बांका किया जाय। क्योंकि यूनानियों को हराने को जहां चन्द्रगुप्त जैसे वीर एवं शूर राजा की आवश्यकता थी ; वहां राक्षस अमात्य जैसे राज्यकार्य कुशल, लोकप्रिय एवं नीतिपटु मंत्री की भी तो आवश्यकता थी। एक के बिना दूसरा अपूर्ण था।

'अमात्यवर ! यूनानी भारत पर आक्रमण कर रहे हैं', अरिमर्दन

ने बड़ी हिम्मत करके कहा।

'मुझे ज्ञात है सैनिक !' राक्षस ने एकदम, पर रोष भरे शब्दों में कहा, 'परन्तु इससे तो सैनिक चन्द्रगुप्त महाराज चन्द्रगुप्त नहीं हो सकता।'

वे दसों सैनिक बन्दी कर लिये गये। उन पर राजविद्रोह का अभियोग चला। राजा धनानन्द यह सुनकर कि सैनिक चन्द्रगुप्त ने राजविद्रोह किया है, आग-बबूला हो गया। उसने आज्ञा दी कि चन्द्रगुप्त को फांसी लगा दी जाय। चन्द्रगुप्त को मृत्यु का डर नहीं था। वह वीर था, वह जानता था कि देश के लिये मरने का सौभाग्य थोड़ों को ही मिलता है। वह कोई अपने लिये सम्राट थोड़े ही बनना चाहता था। वह तो भारत को यूनानियों से बचाने के लिये तथा भारत में फिर से शांति स्थापित करने के लिये इस काँटों के मुकुट को ग्रहण कर रहा था परन्तु उसको इस बात का दुःख अवश्य था कि वह इस अन्यायी राजा के हाथ से मारा जायेगा पर देश की रक्षा न कर सकेगा। यदि युद्ध में लड़ते-लड़ते मारा जाता तब तो वह वीरगति को प्राप्त करता।

परन्तु चन्द्रगुप्त को इस प्रकार मरना नहीं था। जनता नन्द से प्रसन्न नहीं थी, वरन् वह तो उसके अत्याचारों से पीड़ित थी। फिर जो स्वयं वीर हैं, स्वदेशप्रेमी हैं, वे ऐसे आलसी और विषयी राजा को कब पसंद करेंगे। हर एक चाहता तो यही था कि नंद राजा न रहे ; परंतु वह सोचता कि केवल मैं अकेला ही तो यह चाहता हूं और मैं अकेला कर ही क्या सकता हूं! इस तरह उन सब में अकेलेपन की भावना थी सब लोग चन्द्रगुप्त को अपना रक्षक एवं

अगुआ मानने लगे ; परन्तु वह भी मन-मन में। चन्द्रगुप्त ने अभी तक ऐसी कोई योजना तो बनाई नहीं थी कि सबका उसके साथ संबंध आवे। सब एक सी भावना रखने वाले लोग एकत्रित होकर अपने सामूहिक बल का अनुभव करें तथा उस एक के नेतृत्व में रहकर कार्य करें। इसलिये नन्द के विरुद्ध जनमत कितना भी क्यों न हो वह इस प्रकार के असंघटित समूह के भरोसे राजा नहीं बन सकता था। परन्तु हां, उसको इतना लाभ अवश्य हुआ कि बन्दीगृह की दीवारें उसको अधिक दिनों तक न रोक पाईं। रात्रि के घने अंधकार में वह एक दिन भाग निकला। सोता हुआ नंद स्वप्न में चीख उठा और उधर उसकी पहुँच से परे चन्द्रगुप्त के रूप में उसकी मृत्यु अट्टहास कर रही थी।

० ०

: ३ :

चाणक्य की चिन्ता

आज हम काशी, प्रयाग आदि जैसे बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के नाम सुनते हैं। उसी प्रकार से एक विश्वविद्यालय प्राचीनकाल में तक्षशिला में था। तक्षशिला पंजाब में है। यह विश्वविद्यालय बहुत बड़ा था, आज के विश्वविद्यालयों से बहुत बड़ा। इसमें दस हजार से भी अधिक विद्यार्थी पढ़ते थे।

राक्षस अमात्य ने यहां शिक्षा पाई थी। जब वे यहां पढ़ते थे, तब उनके साथ ही एक और ब्राह्मण बालक पढ़ता था। उसका

नाम था विष्णुगुप्त। विष्णुगुप्त अत्यन्त मेधावी, एवं प्रखर बुद्धि का था। परन्तु विधाता ने जहां उसको मेधाशक्ति खुले हाथों दी थी, वहां शरीर सौन्दर्य देते समय अपना हाथ खींच लिया था। उसका रंग काला था, मानों हृदय और मस्तिष्क में स्थान न पा सकने के कारण अज्ञानान्धकार बाहर निकलने का प्रयास कर रहा हो। इस सौंदर्यहीन विष्णुगुप्त तथा राक्षस में बड़ी घनिष्टता थी, शायद इसलिए कि वे दोनों ही राजनीति और समाजशास्त्र में विशेष रुचि रखते थे। राष्ट्रशक्ति की कारण मीमांस पर उनमें खूब चर्चा रहती थी। यह विष्णुगुप्त बाद में चाणक्य कौटिल्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शिक्षा प्राप्त करके राक्षस मगध जैसे बड़े राज्य का अमात्य बना। परन्तु चाणक्य इन झगड़ों से दूर कुटी बनाकर रहता था तथा अपना समस्त समय ज्ञानार्जन में लगाते हुए जो विद्यार्थी उनके पास पढ़ने आते उन्हें पढ़ा देता था।

एक दिन एक शिष्य ने आकर बताया, 'आर्य, यवनों ने भारत में प्रवेश कर लिया है।'

आर्य चाणक्य के माथे पर सिकुड़न पड़ गई ; बिस्फारित नेत्रों से उन्होंने अपने शिष्य की ओर देखा तथा धीरे-धीरे 'यवनों ने भारत में प्रवेश कर लिया है' वाक्य को दोहराया, मानों साथ ही वे किसी गहन विचार में भी पड़े हों।

'क्या भारत का प्रवेश-द्वार किसी ने रोका नहीं ?' उन्होंने पूछा।

'सीमान्त पर अश्वक जी-जान से लड़े गुरुदेव ! परन्तु उनका किला अलिक्सुन्दर ने बुरी तरह घेर रखा था। इधर तक्षशिला का

राजा आम्भिक तो शत्रु से पहले ही मिल गया था। ऐसी दशा में अश्वकों ने अलिक्सुन्दर से सन्धि की प्रार्थना की। उसने उनसे इस शर्त पर सन्धि की कि वे देशी राजाओं के विरुद्ध उसकी सहायता करें। किले के फाटक खुल गये। अश्वक बाहर निकल आये। कुछ दूर उन्होंने अपना पड़ाव डाल दिया। उनकी इच्छा थी कि जन्मभूमि भारत में जाकर यवनों के विरुद्ध लोगों को भड़का दें।'

'ठीक ही सोचा उन्होंने, यही नीति है', आर्य चाणक्य बीच ही में बोल उठे।

'पर आर्य ! वे ऐसा न कर पाये। अलिक्सुन्दर को इसकी टोह लग गई। एक रात जब वे सो रहे थे तो अचानक उसने उन पर आक्रमण कर दिया, विश्वासघात किया। वीर अश्वकों ने झट से अपनी व्यूह रचना की। स्त्री और बालकों को बीच में किया तथा शेष घेर कर यवनों से लड़ने लगे। परन्तु अलिक्सुन्दर की सेना विशाल थी। पुरुष वर्ग काम आया ; फिर स्त्रियां लड़ीं और अन्त में छोटे-छोटे बालक भी', कहते-कहते शीलभद्र का सीना तन गया तथा गर्व से मस्तक ऊँचा उठ गया।

'और क्या हुआ शीलभद्र ?' चाणक्य ने पूछा।

'गुरुदेव ! आगे तो उसका मार्ग निरापद रहा, परन्तु वितस्ता (झेलम) के तट पर राजा पर्वतक ? पोरस ? से घोर युद्ध हुआ। अलिक्सुन्दर ने अपना युद्ध कौशल तो बहुत दिखाया परन्तु कुछ चली नहीं। जब झेलम के किनारों पर दोनों ओर की सेनाएं आमने-सामने खड़ी थीं तब अलिक्सुन्दर ने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि बरसात

में वह नदी पार नहीं करेगा तथा रसद इकट्ठा करना शुरू कर दिया। परन्तु एक अँधेरी रात में ही आक्रमण कर दिया। पर्वतक की सेना कोई अचेत नहीं थी। आक्रमण का करारा जवाब दिया गया। घोर युद्ध हुआ। अभी तक यवन सेना को कहीं गजसेना का सामना नहीं करना पड़ा था। पर्वतक के हाथियों ने बुरी तरह यवन सेना को कुचला। अपनी सूंड़ से लपेट-लपेट कर अश्वारोहियों को पृथ्वी पर पछाड़ दिया। बहुतों को सूँड़ से लपेट कर ऊँचा उठा देते थे तथा महावत झट से उसका सिर काट देते थे। पृथ्वी पर पटक पैर से रौंद पाताल लोक पहुंचाना तो मानों उनका खेल ही था। अलिक्सुन्दर ने जब सेना में यह त्राहि-त्राहि देखी तो वह बहुत ही घबड़ाया। उसने अपनी बची-खुची सेना को भी दूसरे किनारे से बुलवा लिया, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में उसने हारकर पर्वतक के सामने मित्रता का हाथ बढ़ाया।'

'तो अलिक्सुन्दर पराजित हुआ!' आर्य चाणक्य ने प्रसन्न होकर कहा।

'हाँ आर्य! पराजित तो हुआ, परन्तु उसकी पराजय से भारत को कोई लाभ नहीं हुआ। उसकी गति अभी तक नहीं रुकी है। उसने देखा कि पर्वतक एक महत्वाकांक्षी राजा है; अतः उसने प्रस्ताव किया कि चलो हम दोनों आगे चलकर भारत को जीतें, तुम भारत के सम्राट बनना और मैं विश्व का सम्राट।'

'कितना अबोध है पर्वतक! राजनीति से कोरा!!' आर्य चाणक्य विक्षुब्ध होकर बोले।

'अब अलिक्सुन्दर आगे बढ़ रहा है आर्य! उसकी सेना ने

गाँव-गाँव में अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया है ; कई गाँव जला डाले हैं। जो जरा भी सिर उठाता है उसका वध कर दिया जाता है। गाँव लूटे जा रहे हैं, जबरदस्ती लोगों से धन और सेवा ली जा रही है। यवन नन्हें-नन्हें बछड़ों की बलि देकर उत्सव मना रहे हैं। गोवंश का ह्रास हो रहा है। आर्य, ऐसे अत्याचार तो आज तक कभी नहीं सुने' शीलभद्र ने जरा तेज होकर कहा।

आर्य चाणक्य मौन थे। कुछ देर वे इसी प्रकार बैठे रहे। उनकी मुखमुद्रा और भावभंगिमा से यह मालूम पड़ता था जैसे उनके मस्तिष्क में कोई विचार बड़ी तेजी से चल रहा है। अत: वे बोले, 'वत्स शीलभद्र ! महाराज पर्वतक द्वारा अलिक्सुन्दर को हराया जाना अच्छा ही रहा। यवनपति अलिक्सुन्दर को भी पता लग गया होगा कि हिन्दुओं से लोहा लेना कितना कठिन है इससे उसकी सेना की यह धारणा तो निर्मूल हो गई कि वह अजेय है। उसका आत्मविश्वास अवश्य ही हिल गया होगा। परन्तु इसको बिल्कुल उखाड़कर फेंकना है। यह काम तुमको करना होगा। तुम पर्वतक की सेना में प्रवेश करो। उनके सैनिकों द्वारा अलिक्सुन्दर की सेना में यह प्रचार करो कि मगध की सेना अत्यंत विशाल एंव शक्तिशाली है। दुनियां में उसका कोई सामना नहीं कर सकता, और फिर वहां के हाथी तो पर्वतक के हाथियों से चौगुने अधिक हैं। उनकी संख्या इतनी अधिक है कि उनके लिए एक अलग नगर बसाया गया है। वहां के मंत्री राक्षस की एक अलग ही सेना है जिसमें राक्षस ही राक्षस हैं जो कि मनुष्यों को जिन्दा ही खा जाते हैं। पानी तो इतना बरसता है कि महीनों बंद नहीं होता। मगध तक पहुंचने में अभी १८० नदियां और पार

करनी पड़ेंगी जिनमें बहुत सी तो ऐसी हैं कि जिनमें डूबते देर नहीं लगती, आदि-आदि। इससे उनकी सेना में भय का संचार होगा।'

'यह असत्य भाषण मैं कैसे करूंगा आर्य ?'

०-४ 'यह समय सत्य असत्य के विचारने का नहीं है वत्स ! अपने राष्ट्र का कल्याण और उसकी स्वतंत्रता ही सबसे बड़ा सत्य है। आज तो इस झूठे सत्य को लेकर अकर्मण्य बन कर बैठ जाओगे कल समस्त देश पर विदेशी यवन म्लेच्छों का राज्य हो जायेगा ; उनके अत्याचार और उनका गोवध, क्या यह सत्य होगा? जाओ यही सत्य है और इसे करो। मैं तब तक मगध जाता हूं और अलिक्सुन्दर के स्वागत की तैयारी करवाता हूं। ऐसा स्वागत होगा जैसा कहीं नहीं हुआ होगा।'

'आर्य! मगध से एक सैनिक आया हुआ है। वह भी लोगों को समझाता रहता है कि उनको यवनों का विरोध करना चाहिये और एकदम भारत से बाहर निकाल देना चाहिये। पर्वतक को वह बहुत बुरा-भला कह रहा था। कहता था कि वे यवनों के चंगुल में फंस गये हैं उन्हें भारत का सम्राट् बनना था तो स्वयं अपनी शक्ति से बनते। यवनों की सहायता करके उनके द्वारा भारत को पराधीन करवाना एक हिंदू को शोभा नहीं देता।'

आर्य चाणक्य की आंखों में एकदम उत्सुकता की चमक आ गई। 'वत्स ! एक बार उसको मुझसे मिला दो। अवश्य ही वह हमारे लिये उपयोगी होगा', चाणक्य ने कहा।

'आर्य ! अभी जाता हूं, वह यहीं लोगों से बातचीत कर रहा

होगा। उसमें कुछ ऐसा जादू है कि जिससे एक बार बात करता है उसे अपनी ओर खींच लेता है।'

'निःस्वार्थ देशप्रेम ही वह जादू है शीलभद्र ! अच्छा लाओ तो जादूगर को, देखूं तो कैसा जादू है उसका।'

० ०

: ४ :

गुरु व शिष्य की प्रथम भेंट

गुरु को प्रणाम करके शीलभद्र चला गया। आर्य चाणक्य के मन में आज विचारों का तूफान मचा हुआ था। भारत में एक विदेशी राजा का प्रवेश और वह भी यहां के राजा से हारने के बाद ! उनको मन ही मन क्षोभ एवं क्रोध हो रहा था पर्वतक की मूर्खता पर। शत्रु को तो जड़-मूल से उखाड़ फेंकना चाहिये यह नीति कहती है। उसका घर में घुसना, फिर चाहे वह अपने को कितना ही हितू क्यों न सिद्ध करे हानिकारक ही है। खैर अब पिछली भूल पर रोने से क्या लाभ, उन्होंने मन ही मन कहा, 'हां, आगे का प्रबन्ध करना चाहिए।' उन्होंने निश्चय किया कि मगध जाकर वहां के जनमत एवं सेना को अलिक्सुन्दर के विरुद्ध करेंगे ही। परन्तु उसके जीते हुए प्रदेशों में भी विद्रोहाग्नि को भड़काकर उसे दोनों ओर से घेरकर पीस देंगे। इसी प्रकार की बहुत सी योजनाएं उनके मस्तिष्क में घूमती रहीं।

लगभग दोपहर होने पर शीलभद्र ने चन्द्रगुप्त के साथ कुटी

में प्रवेश किया। उसने देखा कि गुरु चाणक्य को वह जिस स्थिति में छोड़ गया था उसी में अभी तक बैठे हैं तथा किसी गहन विचार में मग्न हैं। शीलभद्र और चन्द्रगुप्त दोनों ने प्रणाम किया और बैठ गये। चन्द्रगुप्त मन ही मन यह सोचने लगा कि इस काले कलूटे ब्राह्मण ने जाने क्यों मुझे बुलवाया है। कहीं राक्षस ने इसको मेरी खबर लाने तथा पकड़ लाने को तो नहीं भेजा है अथवा कोई यवनों का गुप्तचर तो नहीं है, यह विचार उसके मन में आते ही उसने अपनी तलवार की ओर देखा और फिर निश्चिंतता से बैठ गया। कितना अधिक था उसका आत्मविश्वास !

आर्य चाणक्य ने बड़ी गम्भीर वाणी में कहा, 'सैनिक ? आज अलिक्सुन्दर मगध जीतने की लालसा से उस पर आक्रमण कर रहा है और तुम मगध छोड़कर यहाँ विचरण कर रहे हो। क्या तुमको अपने कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं है ? क्या तुम यह नहीं समझते कि मगध के हारने से समस्त भारत परतंत्र हो जायेगा ?'

'मुझे अपने कर्त्तव्य का भी ज्ञान है और मैनें भारत की स्वतंत्रता - परतंत्रता के प्रश्न पर भी विचार किया है विप्रवर ?' चन्द्रगुप्त ने उसी प्रकार गम्भीरता से उत्तर दिया।

'फिर यहां क्यों आये हो ? यदि हर एक सैनिक अपनी इच्छा से इधर-उधर घूमता रहेगा तो क्या मगध की रक्षा हो सकेगी ?'

'क्यों नहीं होगी। मगध कोई पारस या मिस्र थोड़े ही है जो इस गर्व से फूले स्वयं ही अपने को विश्वविजेता कहने वाले अलिक्सुन्दर की एक ही चोट में अवनत हो जाये', चन्द्रगुप्त ने बहुत ही सोच-समझकर

कहा। चन्द्रगुप्त ने सोचा कि यदि इस ब्राह्मण के सम्मुख मगध की दुर्बलता का वर्णन किया और यदि यह कहीं यवन सेना का गुप्तचर हुआ तो अलिक्सुन्दर का और हौसला बढ़ जायेगा। चन्द्रगुप्त को धनानन्द ने फांसी की सजा दी थी परन्तु फिर भी वह नहीं चाहता था कि यवनेश अलिक्सुन्दर मगध पर आक्रमण करे। कितना उत्कृष्ट तथा सुलझा हुआ था उसका देशप्रेम, और यही देशप्रेम है किसी भी व्यक्ति की बहुमूल्य निधि।

आर्य चाणक्य चन्द्रगुप्त से बातचीत करते-करते चन्द्रगुप्त को बड़ी पैनी दृष्टि से देख रहे थे। उसका देशप्रेम उनसे छिप न सका और इसलिए इधर-उधर की बातचीत करने की अपेक्षा उसके सम्मुख उन्होंने अपना हृदय खोलकर रख देना उचित समझा। वे बोले 'सैनिक! अलिक्सुन्दर के विरुद्ध मगध की सेना भलीभांति लड़ सके, इतना ही नहीं, उसको वह मगध पहुंचने के पहिले ही रोक दे तथा खदेड़ कर देश के बाहर निकाल दे। इसके लिए मैं मगध जाऊँगा। क्या तुम मेरी कुछ सहायता कर सकते हो ?'

यह सुनकर चन्द्रगुप्त को भी आर्य चाणक्य की सत्यता पर विश्वास हो गया, क्योंकि शब्दों से भी अधिक आर्य चाणक्य के स्वर से पता चलता था कि वे यवनों को भारत से बाहर निकाल देने के लिए कितने तुले बैठे हैं। चन्द्रगुप्त ने उनको अपना परिचय दिया तथा महाराज धनानन्द के समस्त अत्याचारों का पूरा वर्णन किया ; वह क्यों भागकर आया है यह सब बताया।

यह सुनकर आर्य चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को बड़े ध्यान से देखा और फिर ऐसे सिर हिलाया मानों उन्होंने कोई दृढ़ निश्चय किया हो।

उन्होंने देखा कि चन्द्रगुप्त अवश्य ही मगध सम्राट् होने के योग्य है। परंतु फिर भी आज तो मगध के सम्राट पद से अधिक महत्व का कार्य था यवनों को देश से निकालना। चन्द्रगुप्त ने उनको बताया था कि मगध का राजा तो इतना विलासी है कि वह इस बात की कोई चिंता ही न करेगा। 'पर उसका मंत्री राक्षस तो है। वह जैसे और सब काम देखता है वैसे यह कार्य भी करेगा', आर्य चाणक्य ने कहा।

'हाँ आर्य ! अमात्य राक्षस तो हैं परंतु वे तो इतने स्वामिभक्त हैं कि बिना नन्द की आज्ञा के कुछ करेंगे ही नहीं और नन्द आज्ञा देगा नहीं' चन्द्रगुप्त ने बताया।

'फिर भी जाना तो चाहिये ही। राक्षस मेरा सहपाठी है। देशभक्त भी है। अवश्य ही वह मेरा कहना मानेगा।' ऐसा कहकर आर्य चाणक्य ने यह निश्चय किया कि चंद्रगुप्त यहीं रहकर अलिक्सुन्दर के मार्ग में जितनी बाधाएं डाल सके डाले वे मगध जाकर वहा की सहायता प्राप्त करके यमुना से आगे तो अलिक्सुन्दर को किसी प्रकार न बढ़ने दें तथा शीघ्र ही देश से निकाल बाहर करें।

० ०

: ५ :

आचार्य चाणक्य मगध में

उसी क्षण आर्य चाणक्य कुसुमपुर मार्ग पर दिखाई दिये। वे

निरंतर बढ़ते जाते थे। मार्ग की वर्षा और धूप उनको नहीं रोक पाती थी। उनको तो बस यही धुन थी कि कब मगध पहुंचें। यदि कहीं एक कदम भी रुक जाते तो मालूम होता कि बस अब यवन आगे बढ़ गये हैं। एक-एक क्षण जो विदेशी एवं अत्याचारी यवन इस देश में बिता रहे थे वह उनको एक-एक युग के बराबर मालूम होता था और फिर उसकी पीड़ा तो उनको असह्य थी। अपने ध्येय के प्रति आवश्यकता है इतनी लगन एवं तन्मयता की। थके माँदे, बराबर वे डग बढ़ाये चले जाते थे। बस उनके कदम रुके जाकर मगध के राज्य कार्यालय के द्वार पर ही।

अमात्य राक्षस को तक्षशिला के उस ब्राह्मण के आगमन की सूचना दी गई। अमात्य ने एकदम उनको अंदर बुलवाया, देखते ही दोनों का पिछला प्रेम उमड़ आया। राक्षस ने दौड़कर चाणक्य को बाहुपाश में जकड़ लिया। दोनों बड़े प्रेम से मिले। परन्तु चाणक्य तो अपनी बात कहने के लिये अधीर हो रहे थे। 'कुछ देश की खबर है, अमात्य राक्षस ?' चाणक्य ने पूछा।

राक्षस प्रश्न को समझ गया। बोला 'हां अलिक्सुन्दर ने भारत में प्रवेश कर लिया है। पर्वतक से हार कर फिर उसी की सहायता से पंचनद के राजाओं को हरा रहा है।'

'वह मगध पर भी तो आक्रमण करेगा अमात्य श्रेष्ठ !'

'उसके लिये मगध की सेना तैयार है। मगध की प्राणपण से रक्षा की जायेगी।'

'परन्तु कब ? जब वह कुसुमपुर को आकर घेर लेगा ? आज

पंचनद के छोटे राज्यों की रक्षा भी मगध की ही रक्षा है, और फिर देश से यवनों को बाहर करने का कार्य भी तो मगध का ही है।'

'इस सबके लिये तो महाराज से सलाह करनी होगी, विष्णु!'

अन्त में यह तय हुआ कि दूसरे दिन महाराज से सलाह ली जावे। चाणक्य का भी अमात्य राक्षस के साथ चलना तय हुआ। चाणक्य तो चाहते ही थे कि आज ही तथा अभी महाराज के पास चला जाय, परन्तु राक्षस ने बतलाया कि कल से पहिले तो महाराज से भेंट हो ही नहीं सकती। यह सुनकर चाणक्य को चन्द्रगुप्त की बात याद आ गयी। उनके माथे पर बल पड़ गये। सोचने लगे कि जिस राजा से उसका मंत्री भी इतने महत्व के कार्य के लिये समय पर नहीं मिल सकता, वह राजा भारत के इस महान राज्य के योग्य कदापि नहीं है।

० ०

: ६ :

संघर्ष का संकल्प

दूसरे दिन प्रातःकाल ही अमात्य राक्षस तथा चाणक्य राजमहल के द्वार पर पहुंच गये। महाराज को सूचना भेजी गई। बड़ी देर बाद उत्तर आया कि बुला लाओ। दोनों अन्दर गये। महाराज उस समय अपने प्रमोदोद्यान में झूला झूल रहे थे। नर्तकियों का झुण्ड का झुण्ड उन्हें घेरे खड़ा था। मदिरा पात्र पास ही रखा था। अमात्य को देखते

ही महाराज कहने लगे, 'अमात्य, आप हमको व्यर्थ ही कष्ट देते हैं। आप ही क्यों नहीं सब काम कर लेते ? ऐसा क्या बड़ा काम आ पड़ा? क्या होलिकोत्सव का अभी से प्रबन्ध करना है? ओह! अरे (चाणक्य की ओर जरा तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखकर) यह ब्राम्हण कौन है? साक्षात् काल ही मालूम होता है।'

आर्य चाणक्य इस अपमानपूर्ण वाक्य को सुनकर एकदम क्रोध से लाल हो गये। उनकी आँखों में खून उतरने लगा, परन्तु अत्यन्त सावधानी से उन्होंने प्रयत्नपूर्वक अपने क्रोध को दबाकर वही शांत मुद्रा बनाये रखी। वे जानते थे कि इस समय यवनों को भारत से खदेड़ने के लिये मगध की सहायता चाहिये और उसके लिये राजाज्ञा प्राप्त करनी आवश्यक है। यह एक राष्ट्रकार्य है। राष्ट्रकार्य में इस प्रकार के मानापमान की चिंता नहीं की जाती। उनके स्वाभिमान को ठेस अवश्य लगी। परन्तु उससे भी बढ़कर प्रश्न था राष्ट्र के स्वाभिमान का।

'महाराज ! यह मेरे एक सहपाठी हैं, तक्षशिला से आये हैं। अलिक्सुन्दर ने पर्वतक की सहायता से पंचनद के राजाओं से युद्ध प्रारम्भ कर दिया है तथा वह मगध आने वाला है।'

'मगध की सेना तो तैयार है अमात्य ! नयी सेना की भर्ती शुरू कर दो और देखो हमारे लिये कुसुमपुर से दूर पूर्व में एक महल झटपट बनवा दो, हम तो वहीं रहेंगे। लड़ाई से दूर, एकदम दूर। क्यों नर्तकियों ! ठीक है न ?'

'मगध की रक्षा के पहिले तो पंचनद के राज्यों की रक्षा आवश्यक

है महाराज !' आर्य चाणक्य ने बीच में कहा।

'पंचनद के राज्यों की रक्षा हमारी सेना क्यों करे, ब्राम्हण ! तू चाहता है कि हमारी सेना तो सब वहाँ चली जाये और हम मगध में अकेले रह जायें' , नन्द ने कहा।

'महाराज, अलिक्सुन्दर का आगे बढ़ना भारत और मगध के लिये घातक होगा और उसको भारत से बाहर निकालना भी तो मगध राज्य का कर्तव्य है' , आर्य चाणक्य ने कहा।

'हा ! हा ! हा ! अरे ब्राम्हण हमको कर्तव्य सिखाने आया है। नर्तकियों जरा हमारे गुरुजी को देखना तो सही। काल भैरव के अवतार को नमस्कार तो करो हा ! हा ! हा !' महाराज नंद ने व्यंग्य एवं तिरस्कारयुक्त शब्दों में कहा।

आर्य चाणक्य फिर एक बार लहू का घूंट पीकर रह गये। उन्होंने शांतिपूर्वक कहा, 'ब्राम्हण का तो यह कार्य ही है महाराज। आप यदि अब भी चुप बैठे रहें तो यवन अवश्य एक दिन मगध को नष्ट कर देंगे। फिर न तो मगध राज्य रहेगा और न मगध का राजा।'

विवेकहीन व्यक्ति की भांति नन्द यह नहीं समझ पाया कि उसका हित भी राष्ट्र के हित में है। आर्य चाणक्य की यह चेतावनी भी उसे बुरी लगी। वह बोला, 'तू हमको शाप देकर डराना चाहता है ब्राम्हण? नर्तकियों इस ब्राम्हण को धक्के मारकर निकाल तो दो ! धृष्ट कहीं का !'

नर्तकियां आगे बढ़ीं। राजा के शब्दों ने आर्य चाणक्य की

आशा को भग्न कर दिया। अपमान भरे इन शब्दों से उनका हृदय विंध गया। उनका सात्विक क्रोध भड़क उठा। एकदम उन्होंने अपनी चोटी खोलकर प्रतिज्ञा ली कि जब तक नन्द राजा का उच्छेद करके राष्ट्रहितैषी एवं कर्तव्यनिष्ठ राजा गद्दी पर नहीं बैठा दूंगा, तब तक चोटी नहीं बांधूंगा।

नन्द ने इसको ब्राम्हण का प्रलाप समझा। और वह फिर एक बार नर्तकियों के साथ उच्च अट्ठहास कर उठा।

आर्य चाणक्य एकदम राजमहल से बाहर हो गये। अमात्य राक्षस हतप्रभ सा यह सब कृत्य देखता रहा। वह क्या करे उसकी समझ में नहीं आया। चुपचाप वह भी राजमहल से निकल आया। बाहर आकर आर्य चाणक्य से बोला, 'मित्र चाणक्य ! व्यसनाधीन व्यक्ति की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, उसे क्षमा करो।'

'परन्तु राजा का व्यसनी होना तो देश के लिये घातक है अमात्यवर नंद का उच्छेद अपने लिये नहीं, राष्ट्र के लिये करना होगा। देखते नहीं। अलिक्सुन्दर एक के बाद एक छोटे-छोटे राज्यों को हराता जा रहा है। प्रत्येक राज्य का बच्चा-बच्चा अपनी स्वतंत्रता के लिये प्राणपण से प्रयत्नशील है परन्तु उनसे लड़ाई अलग-अलग हो रही है। एक छोटे से राज्य की सेना हो ही कितनी सकती है ! अलिक्सुन्दर के विशाल सैन्यबल के सागर में वह तरंग सी विलीन हो जाती है। आज देश में वीरता है, शूरता है, अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिये सब कुछ अर्पण करने की शक्ति है परन्तु यदि कमी है तो एक सूत्र की जो सबको एकसाथ बाँध सके, अखिल भारतीय एकछत्र सम्राट्‌ की आवश्यकता है। यदि यह नहीं हुआ तो भारतवर्ष में यवनों

का आधिपत्य सदा के लिये हो जायेगा, और यदि इस बार अलिक्सुन्दर लौट भी गया तो फिर कोई और आक्रमण कर देगा। क्या नन्द इस योग्य है? बोलो राक्षस ! तुम्हीं बोलो।'

राक्षस चुप था। फिर चाणक्य ने कहना प्रारम्भ किया, 'राक्षस ! तुम्हारे हृदय में देशभक्ति है, मैं जानता हूँ। जब हम तुम साथ पढ़ते थे तो तुम सदैव देशभक्ति की बातें किया करते थे आज यवनों का आक्रमण देश में सबसे बड़ी विपत्ति है। देश के भाग्य का निपटारा वर्षों के लिये हो रहा है। तुम इस मगध राज्य के अमात्य हो। राजा व्यसनी है। परन्तु तुम्हें तो अपने कर्तव्य का ध्यान है, शक्ति तुम्हारे ही हाथ में है, आओ अपनी सेना को लेकर शत्रुओं को भारत की सीमा से बाहर निकाल दें।'

'परन्तु मित्र ! क्या यह राजद्रोह नहीं होगा ?' अमात्य ने दबी जुबान से कहा।

'अमात्यवर ! राजा राष्ट्र के लिये है न कि राष्ट्र राजा के लिये। यदि अलिक्सुन्दर आज तुम्हारा राजा हो जाये, तो उसकी भक्ति भी तुम राजभक्ति मानकर करोगे ? **०५- राजभक्ति वहीं पुण्य है जहां वह राष्ट्र और देशभक्ति की पोषक हो, अन्यथा पाप है, सर्वथा त्याज्य है।'**

'परन्तु मैंने राजा का इतने दिन अन्न खाया है चाणक्य'।

'छिः छिः ! तुम कैसी अबोध बालक जैसी बातें काते हो ? अन्न तो तुमने खाया है भारत भूमि का। आज उस पर आपत्ति है। आओ अपने अन्न का भार चुकाओ।'

'मैं असमर्थ हूं चाणक्य !' अन्त में अमात्य ने कहा।

आर्य चाणक्य की सब आशाओं पर पानी फिर गया। फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। हां, चुपचाप एक ओर चल दिये। अमात्य उनको रोके, इतना उसका साहस नहीं हुआ।

० ०

: ७ :

भारतीय पराक्रम व अलिक्सुन्दर का अंत

आर्य चाणक्य लौटकर पंचनद गये। उन्होंने निश्चय किया कि वहीं जाकर वहाँ के समस्त छोटे राज्यों को संगठित करके अलिक्सुन्दर का एक साथ सामना किया जाय। परन्तु वहाँ पहुंचने पर उनको पता चला कि उनके लिये इन सबकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई थी। चन्द्रगुप्त ने पहले ही इस साधन का सफल उपयोग कर लिया था। उसने समस्त पंचनद में घूम-घूमकर राजाओं से, उनके सेनापतियों से, गणराज्यों के प्रतिनिधियों से बातचीत की। उनको असली स्थिति समझाई। स्वयं राजा पर्वतक से मिला। उसके हृदय में दबे हुए देश-प्रेम को उभाड़ा। उसने कहा, 'महाराज, आप जैसे वीरों को जन्म देकर भारत भूमि अपने को धन्य समझती है। जिस अलिक्सुन्दर को गर्व था कि दुनियां में उसको कोई हरा नहीं पाया, उसका गर्व आपने ही चूर किया। परन्तु महाराज ! वह आस्तीन का सांप बनकर अपने घर में आ घुसा है। आप क्या सोचते हैं कि मगध-विजय करने के बाद वह आपको राज्य करने देगा ? अवश्य ही वह किसी न किसी प्रकार छल-छिद्र से आपका वध करायेगा। वैसे भी यह कहां तक

उचित है कि आपने जिसको पराजित किया हो वह तो बने विश्व सम्राट और आप उसके आधीन रहें भारत सम्राट ?'

यह बातें सुनकर पर्वतक की आँखें खुल गईं। उन्होंने अपनी सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया। पंचनद के छोटे-छोटे राज्य भी मिलकर अलिक्सुन्दर की सेना को त्रस्त करने लगे। शीलभद्र ने भी चाणक्य की आज्ञानुसार अपना कार्य किया। अलिक्सुन्दर के सिपाहियों की हिम्मत टूट गई मगध नाम सुनते ही उनको जूड़ी चढ़ती थी। बस, एक दिन सबने निश्चय किया कि हम अब आगे नहीं बढ़ेंगे वरन् अपने घर लौट चलेंगे। अलिक्सुन्दर ने बहुत समझाया बुझाया। मदिरा छोड़ दी, तीन दिन तक भोजन नहीं किया, परन्तु कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। अंत में हारकर उसने निश्चय किया कि अब घर लौट चलेंगे तथा कुछ दिन रहकर भारत के बचे हुए प्रदेश को जीतेंगे।

आर्य चाणक्य चन्द्रगुप्त के प्रयत्नों से अत्यधिक प्रसन्न हुए। अब उन्होंने निश्चय किया कि अलिक्सुन्दर को जीवित वापस नहीं जाने देना चाहिये। अतएव वे सिन्धु और मकरान के प्रदेश में गये। वहां के गणराज्यों को पहले से ही उसके विरुद्ध उभाड़ दिया। पश्चिमोत्तर का मार्ग जिस ओर से वह भारत आया था, उन्होंने पहले से ही बन्द कर दिया था, क्योंकि वहां अश्वकों ने विद्रोह कर रखा था। उस ओर से जाने की अलिक्सुन्दर की हिम्मत नहीं थी। सिन्ध और मकरान के मार्ग तक भी वहाँ के निवासियों को इस आक्रामक के विरुद्ध उभाड़कर, उसके लिये और भी कठिन बना दिया।

अलिक्सुन्दर ने अपनी सेना के दो भाग किये। एक तो समुद्री

मार्ग से नियारकस की अध्यक्षता में तथा दूसरा स्वयं उसके साथ मकरान के रेगिस्तान से होकर गया। मल्लियों ने उसको बड़ा तंग किया। यहाँ तक कि एक तीर उसके वक्ष-स्थल पर इतनी जोर का लगा कि अत्यंत घातक घाव हो गया। जिसके फलस्वरूप वह बेबीलोन जाकर मर गया, पारिपात्रपारवर्ती (बलूची) जातियों ने भी उसको बहुत तंग किया। सैकड़ों ही सिपाही बिना पानी के मर गये, कई बालू में झुलस गये तथा युद्ध में तो अनेक मारे गये। अंत में एक दिन वह कह ही उठा, 'भारतवर्ष में मैं हर जगह भारतवासियो के आक्रमण तथा कोप का भाजन बना। उन्होंने मेरे कन्धे को घायल किया। गांधारियों ने मेरे पैर को निशाना बनाया। मल्लियों से युद्ध करते हुए एक तीर की नोक से मेरा वक्षःस्थल छिद गया और गर्दन पर भी गदा का एक तगड़ा हाथ पड़ा। ०-६ '**भारत का आक्रमण मेरे जीवन की सबसे बड़ी भूल है।**'

इस प्रकार आर्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने मिलकर अलिक्सुन्दर को न केवल भारत से ही निकाला परन्तु निकालते-निकालते भी उसके सैन्य का संहार किया, तथा स्वयं उसको मारने का प्रयत्न किया। बेबिलोन जाकर वह मर गया। परन्तु उसने अपने सेनापति सेलेउक् से अपनी भारत विजय की अभिलाषा को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करवा ली।

० ०

भविष्य की योजना

संध्या समय लाल-लाल सूर्य अस्ताचल की ओर भागा जा रहा था मानो पश्चिम की ओर पीठ दिखाकर भागते हुए शत्रु की पीठ पर लगा हुआ विशाल रक्तव्रण हो। चहकते हुए पक्षी शत्रु के इस प्रयाण पर आनन्दगान कर रहे थे। अचानक आये हुए इस बवण्डर से एक दिन विपाशा (व्यास) का जल-प्रवाह क्षुब्ध हो उठा था। आज वह भी शांत कल-कल ध्वनि से बह रहा था और उसके साथ ही सम्पूर्ण देश भी एक सन्तोष की सांस ले रहा था, परन्तु विपाशा के तट पर बैठे हुए दो व्यक्तियों के मन में अभी शान्ति और समाधान नहीं था उनकी मुख-मुद्रा से मालूम होता था कि उनका मस्तिष्क किसी उलझी हुई गुत्थी को सुलझाने में लगा हुआ है।

"अलिक्सुन्दर को अन्त में अपने प्राणों से हाथ धोने ही पड़े आर्य!" चंद्रगुप्त ने शांति भङ्ग करते हुए कहा।

"हाँ वत्स! अलिक्सुन्दर तो भारत आक्रमण के फल को भुगत चुका। संक्रामक रोग का रोगी खुद तो मर जाता है पर अपना रोग दुनियाँ में छोड़ ही जाता है। उसके कीटाणु हवा में फैलकर दूसरों को अपना शिकार बनाते हैं। आज सेलेउक् भी तो भारत विजय करना चाहता है।"

"विश्वविजय की इच्छा रखने वाले अलिक्सुन्दर की जब यहां दाल न गली तो सेलेउक् क्या खाकर भारत विजय का विचार करेगा?" चन्द्रगुप्त ने मुंह बनाकर कहा, और सुना है आर्य! कि अलिक्सुन्दर

के सेनापति सेलेउक् और टालेमी में भी आपस में उसके साम्राज्य के लिए युद्ध हो रहा है।''

'यह सब सत्य है वत्स ! परन्तु भारत का कल्याण तो भारत की ही शक्ति से होगा। दूसरों की दुर्बलताओं के सहारे हम कब तक जीवित रहेंगे। भारत में शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित करने के अपने ध्येय को क्या तुम इतनी जल्दी भूल गये ?' आर्य चाणक्य ने कहा।

'नहीं आर्य ! नहीं ; इस महान् ध्येय को कैसे भुलाया जा सकता है ? हां, अलिक्सुन्दर को भारत से निकाल कर जरा साँस लेने का समय अवश्य मिला है।'

'अभी तो सेर में से पूनी भी नहीं कती है चन्द्रगुप्त !' आर्य चाणक्य ने व्याकुलता से कहा, 'भारत की इस अजेय शक्ति का उषाकाल तो उस समय होगा जब तुम मगध के सिंहासन पर आरूढ़ होओगे। असली कार्य तो अभी आगे पड़ा है।'

आर्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों ही अपने भावी कार्यक्रम पर विचार करने लगे। पश्चिमोत्तर, सिन्धु एवं आधुनिक राजस्थान के छोटे-छोटे राज्यों पर चन्द्रगुप्त का सिक्का जम चुका था। उन्होने उसे अपने नेता के रूप में देखा तथा उसी के दृढ़ नेतृत्व में अलिक्सुन्दर को भारत से खदेड़ा था। परन्तु एकच्छत्री साम्राज्य निर्माण करने में पर्वतक और नन्द दो बड़ी बाधाएँ थीं। भारत में सबसे बड़ा राज्य मगध का ही था, पर पर्वतक का राज्य भी कोई छोटा-मोटा राज्य नहीं था; और फिर अलिक्सुन्दर की सहायता से पंचनद के छोटे-छोटे

राज्यों को जीतकर पर्वतक ने अपने राज्य को और भी बढ़ा लिया था। राजा नन्द विलासी था उसके जीवन में किसी प्रकार की महत्वाकांक्षा नहीं थी। परन्तु पर्वतक महत्वाकांक्षी राजा था। उसकी आकांक्षा थी कि वह भारत का सम्राट बने। चन्द्रगुप्त और चाणक्य दोनों ही उसकी महत्वाकांक्षा को जानते थे।

'पर्वतक भारत का सम्राट बनना चाहता है, जानते हो चन्द्रगुप्त?' आर्य चाणक्य ने पूछा।

'हाँ आर्य ! जानता हूं ; इसीलिए तो उसने अलिक्सुन्दर को पराजित करके भी उससे मैत्री की थी। परन्तु अब क्या है, अब तो अलिक्सुन्दर इस दुनियां में नहीं रहा,' चन्द्रगुप्त ने कहा-

अलिक्सुन्दर नहीं रहा तो क्या हुआ, उसका सेनापति सेलेउक् तो है। पर्वतक है भी इतना महत्वाकांक्षी कि अपनी इस महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने के लिये सेलेउक् से सहायता लेने में वह संकोच नहीं करेगा। विदेशी को सहायता के लिये बुलाना तो शत्रु को घर का मार्ग दिखाना है।'

'तब तो पहिले पर्वतक से युद्ध किया जाय आर्य !'

चन्द्रगुप्त ने उत्तेजित होकर कहा।

'नहीं वत्स !' आर्य चाणक्य मुस्कराते हुए बोले, पर्वतक से अभी युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। नन्द और पर्वतक ये दो कांटे हैं, कांटे से ही कांटा उखाड़ना बुद्धिमानी का काम है। नन्द तो विलासी, आलसी और कायर है। उसमें किसी भी प्रकार की महत्वाकांक्षा नहीं। परन्तु पर्वतक वीर एवं महत्वाकांक्षी है। उसको

मगध पर आक्रमण करने के लिये उकसाया जाय ; वह तैयार हो जायगा, नन्द को वह अवश्य ही पराजित करेगा। परन्तु इसके पहिले कि वह मगध पर अधिकार जमावे, तुम मगध के रक्षक के रूप में प्रकट होकर पर्वतक से युद्ध करना। उस युद्ध में अथवा अन्य किसी षड्यंत्र के द्वारा तुम्हें पर्वतक का वध करना होगा। मगध की जनता तुमको त्राता पाकर अवश्य ही तुम्हारा अभिषेक करेगी। इसके लिए मैं नन्द के विरुद्ध अभी जाकर जन समाज को उभाड़कर संगठित करता हूं और तुम पर्वतक से मिलकर आक्रमण की तैयारी करो।'

'पर्वतक के साथ इस प्रकार विश्वासघात कहां तक ठीक होगा आर्य ! मेरे स्थान पर उसी को भारत का सम्राट बनने दीजिये। एकच्छत्र सम्राज्य ही तो चाहिए। सम्राट फिर कोई भी क्यों न हो।'

'चन्द्रगुप्त तुम भूल रहे हो। तुम्हारा व्यक्तित्व अभी मिटा नहीं है। तुम अपने लिए नहीं, भारत के लिए सम्राट बनोगे। चन्द्रगुप्त सम्राट नहीं होगा परन्तु भारत सम्राट चन्द्रगुप्त होगा। पर्वतक जैसा स्वार्थी तथा महत्वाकांक्षी, फिर वह कितना ही वीर क्यों न हो सम्राट बनने के योग्य नहीं है। भारत का सम्राट तो नि:स्वार्थ वृत्ति से संयम एवं दृढ़तापूर्वक जनता की सेवा करने वाला व्यक्ति चाहिए। भगवान् ने तुमको ये गुण दिये हैं, पर तुम भूल से उन्हें अपना समझ बैठे हो। वे देश के हैं देश का अधिकार है उनका उचित उपयोग करे। तुम सम्राट बनने वाले कौन होते हो ?

०-७ आज देश को आवश्यकता है तो तुम उसकी पूर्ति को सम्राट् बनोगे, कल आवश्यकता होगी तो उसी के लिये तुम्हें भिक्षुक भी बनना पड़ेगा।'

आर्य चाणक्य बोलते-बोलते आवेश में आ गये । चन्द्रगुप्त एकदम सहम गया । वह धीरे से क्षमा याचना करता हुआ बोला, 'क्षमा कीजिये आर्य ! मैने देश के सामने अपने स्वार्थों को कोई महत्व नहीं दिया है, पर हां, सर्वाङ्गपूर्ण देशभक्ति की कल्पना अभी तक मेरे सम्मुख नहीं आई थी । आज अवश्य ही मैने एक नया पाठ पढ़ा है ।'

'हां, वत्स ! इस पुण्यभूमि भारत के लिये एक पर्वतक नहीं कितने ही पर्वतकों की बलि देनी होगी । अच्छा, उठो, सबसे पूर्व तो वाह्लीकों को जाकर जगाओ । अलिक्सुन्दर के राज्य में भारत का यह भाग अभी तक है । विद्रोह का यह उपयुक्त समय है । उनकी तथा अन्य छोटे-छोटे राज्यों की सेना को संघटित करके पर्वतक के साथ नन्द पर आक्रमण की तैयारी करो ।'

० ०

: ९ :

अभिषेक की तैयारी

आर्य चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को विदा कर मगध की ओर प्रस्थान किया । आज से कुछ वर्ष पूर्व भी वे वहां भारत से अलिक्सुन्दर को निकालने के लिए मगधराज नन्द को उसके कर्तव्य का ज्ञान कराने एवं उससे सहायता की याचना करने गये थे ; आज और जा रहे थे ; भविष्य में कोई अलिक्सुन्दर भारत की ओर मुख भी न कर सके इसलिए मगध में एक शक्तिशाली साम्राज्य के निर्माण के हेतु

नन्द वंश को नष्ट करने आज वे याचक बनकर नहीं, संहारक बनकर जा रहे थे, पर याचना और संहार दोनों ही के पीछे था सात्विक देश प्रेम। रात्रि के निविड़ अन्धकार में आर्य चाणक्य ने वेष बदले चुपके से कुसुमपुर में प्रवेश किया। राजा नन्द बेखबर अपने राजमहल में पड़ा हुआ था। सर्वनाश इसी प्रकार वेष बदलकर चुपचाप प्रवेश करता है।

कुसुमपुर में उनका निवास नन्द-राज्य के लिए घुन का काम करता था। उनका एक-एक क्षण उसके राज्य की जड़ें, खोखली बनाने में व्यतीत होता था। नन्द की सत्ता उनको असह्य हो गई थी। राज्य में आकर नन्द के दुराचारों का प्रत्यक्ष ज्ञान होने के कारण उनको और भी तीव्र वेदना होती थी - ज्यों-ज्यों यह वेदना तीव्र होती, त्यों-त्यों वे अपने कार्य की गति को भी तीव्र करते। जनता में फैली हुई नन्द विरोधी भावनाओं का उन्होंने पूर्ण लाभ उठाया, मन्त्री राक्षस तथा सेनापति भागुरायण के मन-मुटाव को अधिक उत्तेजित करके भागुरायण को अपनी ओर मिला लिया। सामन्त शकटार जिसके कि छः पुत्र राजा नन्द ने वध करवा दिये थे ; वह भी इनकी ओर आ मिला।

कुसुमपुर में आर्य चाणक्य सब तैयारी कर चुके थे। चन्द्रगुप्त को आक्रमण के लिये कब बुलाया जाय, इसी विचार में बैठे हुए थे कि चन्द्रगुप्त का दूत भी आ पहुंचा। वह अभिवादन करके एक ओर खड़ा हो गया। आर्य चाणक्य ने कुशलक्षेम के उपरान्त समाचार पूछे। दूत बोला, आर्य वाह्निकगण आज स्वतन्त्र है। महाराज चन्द्रगुप्त ने उनको स्वातन्त्र्य सन्देश सुनाया, उन्होंने उनमें नवजीवन का संचार

कर दिया। उनकी विद्रोहाग्नि भभक उठी और उसमें उनकी दासता तथा यूनानी क्षत्रप दोनों ही भस्मीभूत हो गये। अब महाराज ही उनके अधिपति हैं।'

'यह तो ठीक ही हुआ दूत ; पर शेष राज्यों का क्या हाल है ?'

'आर्य ! महाराज ने कुलूत के चित्रवर्मा, मलय के सिंहनाद, कश्मीर के पुष्कराक्ष तथा सिन्धु के सिन्धुसेन तथा अन्य छोटे-छोटे गणराज्यों को अपनी ओर मिला लिया है। वे सब अपनी सेना लेकर महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा पर कूच करने को तैयार हैं।

'और पर्वतक से भी कुछ बातचीत हुई है या नहीं ?'

'हां आर्य ! मगध के आक्रमण के प्रत्यक्ष नता तो वे ही हैं। भारत के भावी सम्राट् बनने की लालसा से वे भी दल-बल सहित आ रहे हैं। आक्रमण के लिए कौन-सा समय उपयुक्त होगा तथा आपका आदेश क्या है, इसीलिए मुझे यहां भेजा है।'

आर्य चाणक्य यह सुनकर फिर विचारों में लीन हो गये। कौन सा दिन इसके लिये उपयुक्त होगा, यही था उनके सामने मुख्य प्रश्न।

एकाएक जयघोष की तुमुल ध्वनि से उनकी शांति भंग हुई दूत को उन्होंने जयघोष का कारण जानने के लिये भेजा। थोड़ी देर में दूत ने बताया कि अगले मास में इसी तिथि को राजकुमार सुमाल्य के यौवराज्यामिषेक की घोषणा की जा रही है, आचार्य चाणक्य की आँखों में एकदम चमक आ गई। क्रूर मुस्कान उनके होठों पर खेलने लगी। फिर दृढ़ता के साथ बोले, 'दूत ! अभिषेक की घोषणा हो

चुकी है। अभिषेक होना ही चाहिये। जाओ चन्द्रगुप्त से कहो कि 'अभियान का यही दिन उपयुक्त है, कुसुमपुर पहुंचने तक अपनी सेना की गतिविधि का पता न लगने पावे।'

'अभिवादन करके दूत चला गया। आर्य चाणक्य भी अभिषेक की तैयारी में जुट गये।

० ०

: १० :

सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय।

मगध के राजभवन में आज चहल-पहल मची हुई है। परिचारक एवं परिचारिकायें इधर से उधर दौड़-धूप कर रहे हैं। राजमहिषी स्वयं आज बड़ी व्यस्त हैं। राजमहल की सब सजावट अपनी ही देख-रेख में करवा रहीं हैं। कभी इस बेलि को यहां से हटवाकर वहां लगवाती हैं तो कभी चित्रों को इधर से उधर हटाती हैं। यौवराज्याभिषेक के पश्चात् राजमहिषी के पास आशीर्वाद के लिए आने को राजकुमार सुमाल्य के लिए प्रवेश-द्वार विशेष रूप से बनाया गया है। राजमहिषी ने विज्ञ कलाकार की भाँति उसका सुरुचिपूर्ण निर्माण करवाया है। महाराज नन्द के लिए आज विशेष सुरा ढाली गई है। राज्य भर की नर्तकियां आज कुसुमपुर में एकत्र हैं। प्रत्येक के लिए अपनी-अपनी रुचि के वस्त्राभूषण दिये गये हैं। उनसे अपेक्षा है कि अपनी नृत्यकला का अनूठा प्रदर्शन करके आज महाराज, राजकुमार तथा दरबारियों के चित्त को लुभाकर मनमाना पुरस्कार पावें।

यह साज सजावट राजमहल तक ही सीमित नहीं है, बल्कि पूरा कुसुमपुर आज सजाया जा रहा है। जनता के हाथ, पैर तो सजावट में लगें हैं परन्तु उनका हृदय उसमें नहीं है। वह तो हृदय में अत्याचार की वेदना लिए हुए अन्तस्थल में विद्रोहाग्नि की चिनगारी को उत्तप्त श्वास से प्रज्जवलित करते हुये मुख पर हास्य एवं प्रसन्नता का दिखावा कर रही है। वह दीप-प्रकाश की तैयारी अभिषेक का आनन्द प्रकट करने के लिए नहीं कर रही पर इसलिए कि दीप से दूसरा दीप जलकर वह प्रलयङ्कारी ज्वाला प्रकट हो जिसमें समस्त नन्दवंश भस्मीभूत हो जावे।

चारों ओर की इस चहल-पहल में आर्य चाणक्य भी सम्मिलित हैं। परन्तु वे दूसरे ही अभिषेक की तैयारी में हैं। वे तो क्रांति के अग्रदूत की भांति व्यस्त हैं। अपने दूतों को उन्होंने चारों ओर लगा रखा है। सेनापति भागुरायण को, जिन्हें उन्होंने अपनी ओर फोड़ लिया था, आज सचेत कर दिया है। सेना को आज्ञा मिल चुकी है कि सेनापति के सिवाय और किसी की आज्ञा का पालन न करे। सुमाल्य की विमातायें भी आज उसके प्राणों की ग्राहक हैं। कौटिल्य की कूटनीति ने मगध राज्य को चारों ओर से जकड़ रखा है।

महारानी तथा राजकुमार सुमाल्य बड़ी उत्सुकता से राजतिलक की घड़ी की बाट जोह रहे थे। काम में लगे हुए मनुष्य का समय घोड़े की चाल से दौड़ता है परन्तु आज एक क्षण का अवकाश न रहने पर भी इन दोनों का समय बहुत धीरे-धीरे रेंगता सा जा रहा था। सुमाल्य भविष्य के सुनहले स्वप्नों के झूलों में झूल रहा था यदि कहीं उसे अपने भविष्य का सच्चा ज्ञान होता तो

ने भविष्य इसलिए अंधकार में रखा है, ताकि वर्तमान के क्षणिक सुख में उस सुख का आनन्द लूटने से, अथवा वर्तमान के क्षणिक दु:ख में अपनी शक्तियों का उपयोग करने से मनुष्य वंचित न रह जाय। जैसे-तैसे वह घड़ी उपस्थित हुई। राजमहल से महाराज, युवराज अमात्य तथा समस्त सभासदों की सवारी चल दी। बन्दीगण जयगान करते जाते थे, जयघोष से गगन-मण्डल गूंज उठा।

एकाएक अमात्य राक्षस को दूसरा ही जयघोष सुनाई पड़ा उनके कान अनिष्ट की आशङ्का से खड़े हो गये। सेनापति ने कहा कि महाराज के जयघोष की सुदूर हिमालय से टकराकर लौटने वाली प्रतिध्वनि होगी। परन्तु यह तो विलासी नन्द के अत्याचारों से क्षुब्ध प्रजा की आहों की प्रतिध्वनि थी जिसकी गूँज विनाशकारी तूफान की भाँति प्रतिक्षण बढ़ती ही जाती थी। अमात्य राक्षस को संतोष नहीं हुआ। उसके हृदय में व्याकुलता थी। उनके कान आस-पास के तुमुलनाद को न सुनकर दूर के ही जयघोष को सुन रहे थे। इतने में ही दूत दौड़ता हुआ आया। माथा ठोंककर अमात्य राक्षस के सम्मुख खड़ा हो गया। अमात्य राक्षस ने व्याकुलता के साथ कुछ क्रुद्ध होकर पूछा, 'बोलो दूत क्या है ? यह अपशकुन कैसा ? बोलो, शीघ्र बोलो !'

'प्रलय हो गया अमात्यवर ! कुसुमपुर को शत्रुओं ने घेर लिया है। यदि शीघ्र ही उनको न रोका गया तो राजमहल तक पहुंच जावेंगे। अमात्य राक्षस को एकदम धक्का लगा। उनकी शंका निर्मूल न रही। परन्तु उन्होंने अपने को संभाला।सवारी को एकदम रोक देने की आज्ञा दी गई, महाराज नन्द कुछ समझ न पाये। अमात्य राक्षस ने जाकर कहा, 'महाराज ! अभिषेक किसी अन्य दिन कीजियेगा। आज तो

रण करना होगा। शत्रुओं ने नगर को घेर लिया है।'

कायरता का पुतला नन्द एक बार कांप गया। परन्तु दूसरे ही क्षण बोला, 'अमात्य ! हमारे शत्रु तो हमको सताते ही हैं, परन्तु तुम भी रंग में भंग कर देते हो। आज अभिषेक का दिन है। राज्य के कोने-कोने से नर्तकियां आईं हैं और तुम कहते हो रण को चलो। जाओ, तुम और सेनापति, सेना लेकर रण करो, तुम लोगों को और सेना को इसीलिये तो वेतन मिलता है। तुम अपना काम करो और हमको अपना काम करने दो, सवारी को आगे बढ़ने दो।'

अमात्य क्रोध से दांत पीसकर रह गया। उसको विश्वास हो गया सर्वनाश निश्चित ही है, जैसे ही उन्होंने अपने घोड़े की बाग मोड़ी कि भीड़ में से एक चमचमाती हुई कटार आती हुई दिखी। विद्युत के प्रकाश की भाँति उसका प्रकाश भी आकाश में खेल गया तथा दूसरे ही क्षण वह नन्द के वक्षस्थल पर खून में सनी हुई ग्रहण के चन्द्र की भाँति चमक उठी। नन्द एक क्षण चीत्कार करके इस लोक को छोड़ गया।

चारों ओर कोलाहल मच गया। राज कर्मचारीगण घबरा गये। उनकी समझ में नहीं आता था कि क्या किया जाय। वे नन्द की लाश उठाकर राजमहल की ओर भागने लगे। एकाएक 'महाराज चन्द्रगुप्त की जय' से आकाश मंडल गूँज उठा। राक्षस अमात्य समझ गये कि इस विद्रोह का नेता चन्द्रगुप्त ही है। आज से पाँच वर्ष पूर्व का दृश्य उनकी आँखों के सामने इस अशांत वातावरण में भी एक साथ उपस्थित हो गया। उन्होंने सेनापति को पुकारा। परन्तु सेनापति वहाँ नहीं थे। वे सीधे सेनास्थल पर पहुंचे तथा रणभेरी बजाने की आज्ञा

दी। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जबकि उनकी आज्ञा की अवहेलना की गयी।

'सेना तो सेनापति की ही आज्ञा मानती है अमात्यवर !' एक सैनिक ने अभिवादन करके नम्रतापूर्वक कहा।

'यदि सेनापति अनुपस्थित हो तो उच्च अधिकारियों की आज्ञा मानना भी तुम्हारा कर्तव्य है, सैनिक !' अमात्य ने कुछ रोष तथा प्रार्थनामिश्रित स्वर से कहा। परन्तु उनका तर्क निष्फल रहा। सैनिक निश्चेष्ट खड़े रहे।

राक्षस समझ गये कि सेना उनका साथ नहीं देगी ! उनकी आँखों के सामने अन्धकार छा गया। परन्तु भीषण अन्धकार में भी हाथ पर हाथ रखकर वे बैठने वाले नहीं थे। राजमहल के रक्षक आदि थोड़ा बहुत सैन्य एकत्रित करके सुमाल्य की अध्यक्षता में उन्होंने पर्वतक का सामना किया। परन्तु उनकी थोड़ी सी सेना पर्वतक एवं चन्द्रगुप्त की विशाल सेना के सामने कहां टिक सकती थी ? प्रचण्ड ज्योति-पुञ्ज को बुझाने की इच्छा रखने वाले पतिंगों की भाँति वह भी नष्ट हो गयी। सुमाल्य युद्ध में मारा गया।

पर्वतक मगध का सम्राट बनने की इच्छा से आया था, परन्तु जब विजय के बाद उसने चन्द्रगुप्त का उद्घोष सुना तो वह आश्चर्यचकित रह गया। उसके सहकारी सिन्धु, मलय, काश्मीर , कुलूत, वाह्नीक, अश्वक, क्षुद्रक, गालब, काम्बोज, गांधार सबके सब चन्द्रगुप्त के साथ थे। और उससे भी बढ़कर मगध की सेना और जनता चन्द्रगुप्त का स्वागत कर रही थी। राजा नहुष की भाँति पर्वतक स्वर्ग से धकेला

जा रहा था, वह अपना सहायक खोजने लगा, जो उसको फिर स्वर्ग के सिंहासन पर बिठावे। उसे अपने पुराने मित्र अलिक्सुन्दर की याद आई। इस तरह अपनी बाजी जाती देखकर पर्वतक ने अंत में देश को ही दांव पर लगा दिया। **०९-स्वार्थी व्यक्ति स्वार्थ-सिद्धि के लिये देश तक को बेचने को तैयार रहता है।** यही पर्वतक ने किया। सेलेउक् को भारत पर आक्रमण करने के लिये बुलाया। परन्तु उसके विपक्षी खिलाड़ी चाणक्य और चन्द्रगुप्त थे। उनसे बाजी जीतना आसान नहीं था।

आर्य चाणक्य को ज्ञात हो गया कि पर्वतक ने अपना दूत सेलेउक् के पास सहायता के लिये भेजा है। पर्वतक को मार्ग से वैसे ही हटाना था, अब तो वह देशद्रोही था, उसको दूर करने में विलम्ब करना भी पाप था। पर्वतक वीर होते हुये भी विलासी है, यह आर्य चाणक्य को विदित था। उसकी यही दुर्बलता उसकी मृत्यु का कारण हुई। एक दिन आर्य चाणक्य ने एक सुन्दर विषकन्या उसके पास भेजी। दूसरे दिन जब पर्वतक के शिविर से उसकी अर्थी निकली तो दुनियाँ ने जाना कि पर्वतक भी उसी लोक को गया जहाँ सबको जाना है।

समस्त उत्तर भारत के राजा अथवा गणराज्यों के अधिकारी मगध में उपस्थित थे। बड़े समारोह के साथ चन्द्रगुप्त का अभिषेक हुआ। 'महाराज चन्द्रगुप्त की जय' समस्त उत्तरापथ में गूँज गई। परन्तु यह तो भारत के भाग्योदय का उषाकाल था। पश्चिम की ओर भागता हुआ अन्धकार इस बालरवि को ग्रसने का अभी भी निष्फल प्रयास कर रहा था।

: ११ :

सेलेउक् का दुस्साहस

पर्वतक अपने देशद्रोह का फल पा चुका, परन्तु उसका तीर तो छूट ही चुका था। छूटा हुआ तीर वापस नहीं आता। सेलेउक् को भारत के इस कुपूत का संदेश मिला। वह तो स्वयं ही भारत-विजय की तैयारी में था। बिना भारत-विजय किये उसको 'निकेतौर' (विजय) की उपाधि धारण करना खटकता था। नियति भी उसकी इस उपाधि पर तथा इस उपाधि के धारण करने की इच्छा पर मुसकुरा रही थी।

'क्या महाराज पर्वतक ने गांधार प्रदेश का मार्ग यूनानी सेना के लिये सुरक्षित कर दिया है ?' सेलेउक् ने पर्वतक के दूत से पूछा। अश्वकों के भीषण युद्ध को याद करके उसकी देह से पसीना छूटने लगा। उनसे फिर युद्ध करने की हिम्मत नहीं थी।

'सुरक्षित करने का प्रश्न ही कहां है महाराज। उत्तर भारत के समस्त राजा एवं अधिपतिगण तो मगध की राजधानी में अपनी-अपनी सेना लिए पड़े हैं। सीमांत से लेकर मगध तक भारत अनाथ जैसा है। बस मगध में जरा चन्द्रगुप्त से लड़ना होगा।'

'चन्द्रगुप्त से ?' सेलेउक् ने एकदम चौंककर कहा। दूसरे ही क्षण सेलेउक् ने गहरी सांस लेकर कहा, 'चन्द्रगुप्त तो बहुत बेढब

व्यक्ति है। उसके कारण तो सम्राट अलिक्सुन्दर को भारत छोड़ना पड़ा था।'

दूत ने सेलेउक् की हिम्मत बढ़ाने की गरज से कहा -'नन्द वंश को उखाड़कर चन्द्रगुप्त ने अभी अपने साम्राज्य का बीज बोया ही है। चाणक्य यद्यपि प्रयत्न कर रहा है कि यह बीज शीघ्र ही विशाल वटवृक्ष का रूप धारण कर ले। परन्तु महाराज मगध में अभी भी ऐसे व्यक्ति हैं जो इस बीज को जमने नहीं देना चाहते। आपका आक्रमण तो अवश्य ही उत्तर शीत वायु के साथ आने वाली हिम-वर्षा के समान होगा।'

'ऐसे कौन लोग हैं, दूत ! जो चन्द्रगुप्त का विरोध कर रहे हैं ?' सेलेउक् ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

'नन्दवंश के प्रति भक्ति रखने वालों की कमी नहीं है महाराज। नन्द का अमात्य राक्षस ही है जो कि नन्दवंश के अभिशाप चन्द्रगुप्त को फूटी आँखों नहीं देख सकता।'

'क्या महाराज पर्वतक ने उनसे बातचीत नहीं की दूत !'

'अवश्य की थी महाराज ! परन्तु राक्षस इस बात से सहमत नहीं था कि मगध को चन्द्रगुप्त के पंजे से छुड़ाकर महाराज पर्वतक मगध की गद्दी पर बैठें। वह तो नन्दवंश की अंतिम ज्योति मगधराज धनानन्द के चाचा सर्वार्थसिद्धि को गद्दी पर बिठाना चाहता था।'

सेलेउक् ने मन ही मन कहा, 'मैं भी कब चाहता हूं कि पर्वतक मगध की गद्दी पर बैठें, और न बैठने ही दूंगा। क्या यूनाना में शासकों की कमी है जो एक भारतीय भारत का राजा हो ?' परन्तु प्रत्यक्ष

बोला, ' तब तो अमात्य राक्षस की सहायता मिलनी कठिन है ?'

'नहीं महाराज ! मुझे भारत छोड़ने के पूर्व ही ज्ञात हो गया था कि सर्वार्थसिद्धि का वध करवा दिया गया है और फिर जब राक्षस को मालूम होगा कि आप भी महाराज पर्वतक की पीठ पर हैं, तब उसे अवश्य ही हम लोगों की विजय का विश्वास हो जायगा तथा हमारी ओर आने में ही अपना भला समझेगा। आप अपना दूत तो भेजिये !'

सेलेउक् ने स्वीकारोक्ति में केवल गर्दन हिलायी। भारत आक्रमण का उसने निश्चय किया। दूत को विश्राम के लिये भेजकर अपने सेनापति एवं अन्य अधिकारियों को तुरन्त ही मन्त्रणा के लिये बुलावाया। घण्टों तक मन्त्रणा चलती रही। अलिक्सुन्दर पर कैसी बीती थी, यह वे सब जानते थे। भारत पर पुनः आक्रमण किया जाय, इसकी हिम्मत नही होती थी।

'यदि इस बार भी पराजय हुई तो परिणाम बड़ा भीषण होगा निकेतौर', एक अनुभवी सेनापति ने कहा।

'पराजय और निकतौर' दोनों साथ-साथ ही नहीं चल सकते सेनापति ! निकेतौर पराजय नहीं जानता। भारत की इस अस्त-व्यस्त दशा में तथा महाराज पर्वतक जैसा सहायक प्राप्त होने पर भी भारत विजय न हो सका तो फिर कभी नहीं हो सकेगा।'

सेलेउक् ने अपने समस्त सेनापतियों को उत्साहित किया। भारत से कितना अपार धन मिलेगा, इसको खूब ही समझाया। सेनापतियों के मुंह में पानी भर आया। बस, युद्ध की घोषणा कर दी गई।

अब तो सेना सुसज्जित होने लगी। शिरस्त्राण, खड्‌ग, एवं शूल फिर एक बार सूर्य किरणों में चमचमा उठे।

सेना ने भारत की ओर कूच कर दिया। राक्षस के पास दूत तो पहले ही भेजा जा चुका था। वह सोचते थे कि अमात्य राक्षस और महाराज पर्वतक भारत में उनका स्वागत करने को तैयार होंगे, परन्तु अन्दर ही अन्दर उनसे अधिक प्रबल शक्ति कार्य कर रही थी।

० ०

: १२ :

सशक्त भारत

सिन्धु का शांत प्रवाह आज विक्षुब्ध हो उठा है। मगध की सेना उसके बाएं तट पर डेरा डाले पड़ी है। घोड़ों की हिनहिनाहट तथा हाथियों की चिंग्घाड़ ने एकबारगी फिर तपोवन के तपस्वियों की शांति को भंग कर दिया। सेना का एक विभाग तो आठ दिन पूर्व ही यहां आ गया था, दूसरा आज ही मगध से आया है। उसके समस्त कर्मचारीगण अपने शिविर के आयोजन में लगे हुए हैं।

'शत्रु को इस बार ऐसा कीलना होगा कि फिर सिर उठाने का नाम ही न ले,' एक सैनिक ने कहा और पटकुटी की मेख पर जोर से हथौड़ा मारा।

'अलिक्सुन्दर की इतनी दुर्गति हुई, फिर भी ये यवन भारत विजय की कल्पना करते हैं काका ? कितने धृष्ट हैं,' पास ही पटकुटी

का रस्सा पकड़े हुए एक युवक ने अधेड़ उम्र के सैनिक से कहा।

'इसमें शत्रु की धृष्टता या हिम्मत का क्या प्रश्न है ? हेमनाथ ! यह तो हमारा ही दोष है। हमारी अराष्ट्रीय प्रवृत्तियां ही उसे हमारे घर में घुसने को उकसाती हैं। परन्तु अब भारतवर्ष अलिक्सुन्दर के समय से अधिक संघटित एवं शक्तिशाली है। महाराज पर्वतक पुरु राज्य की रक्षा के लिये अलिक्सुन्दर से लड़े थे परन्तु आज तो हम भारत की रक्षा के लिये लड़ने आये हैं। कितना अन्तर है तब में और अब में।'

'काका ! तुम भी लड़े थे यवनों से ?' हेमनाथ ने पूछा।

'मुझे वह सौभाग्य कहां मिल सका' अरुणाभ ने ठण्डी सांस लेते हुए कहा, जब मैंने सुना कि अलिक्सुन्दर ने भारत पर आक्रमण किया है। तो मेरी भुजाएं फड़कने लगी थीं, रक्त में उबाल आया, परन्तु महाराज नन्द की कायरता ने हमारे खड्ग को म्यान से न निकलने दिया। हमारा तीर तूणीर ही में रह गया। और भी हेमनाथ ! तब हममें बहुत थोड़े ही मगध के आगे देख सकते थे। हरिशील से ही पूछो, (एक सैनिक की ओर इशारा करते हुए) इसने उस समय क्या उत्तर दिया था।'

'पिछली बातों की याद दिलाकर क्यों लज्जित करते हो भाई !' हरिशील बोला, 'आज तो मैं समस्त भारत को अपना समझता हूं। आज दुगुने शत्रुओं का संहार करके अपना ऋण चुकाऊँगा। अमात्य राक्षस ही जब नन्दवंश और मगध के आगे नहीं सोच सकते थे, तो फिर हमारी क्या बात है ?' कुछ संतोष मानते हुए हरिशील ने कहा।

अरुणाभ बोला, 'आज तो अमात्य राक्षस की राष्ट्रीयता की प्रशंसा करनी ही होगी। पहले तो वे महाराज चन्द्रगुप्त का विरोध ही करते रहे परन्तु जब सेलेउक् का दूत उनके पास देशद्रोह का संदेश लेकर आया तो इस राष्ट्रीय आपत्ति के समय उन्होंने महाराज का साथ देना ही ठीक समझा। ज्ञात है उन्होंने सेलेउक् के दूत से क्या कहा ? उन्होंने कहा था, 'दूत जाओ, सेलेउक् से कह देना, पर्वतक भारत का अन्तिम देशद्रोही था और वह वहाँ पहुंच चुका है; जहाँ प्रत्येक देशद्रोही अपने पाप का प्रायश्चित करता है। आकाश कुसुम की भाँति भारत से देशद्रोही ढूँढ़ने का प्रयत्न न करना।'

'यही कारण है कि आज भारत इतना सशक्त है' रामवीर बोला

१०- सम्पत्ति में देश का साथ न देने वाला क्षमा किया जा सकता है;परन्तु विपत्ति में शत्रु के साथ मिलकर देशद्रोह करने वाला तो दूर रहा; देश का साथ न देकर चुप बैठने वाला भी क्षमा नहीं किया जा सकता। इसीलिए तो अमात्य राक्षस ने फिर मन्त्रिपद ग्रहण कर लिया है सेलेउक् का आक्रमण तो हमारे लिये वरदान स्वरूप है। इसने हम सबको कितना निकट ला दिया। ०

११-आज सम्पूर्ण भारत एक आवाज से बोलता है और एक इशारे पर काम करता है। इस एकता में कितनी शक्ति है। यह सेलेउक् को भी मालूम हो जायगा,' कहते-कहते हरिशील जोश में आकर खड़ा हो गया। इतने में भेरी बजी, मानों हरिशील ने जिस एकता का वर्णन किया था, उसे वह प्रत्यक्ष दिखाना चाहता हो।

शब्दभेदी बाण

सिन्धु के तट पर सैनिकों को अधिक बाट नहीं जोहनी पड़ी दो ही दिन बाद गुप्तचर ने समाचार दिये कि सेलेउक् अपनी विशाल सेना लेकर मगध पर आक्रमण करने की तैयारी से कुछ ही दूर डेरा डाले पड़ा है । चन्द्रगुप्त ने यही उचित समझा कि युद्ध सिन्धु के तट पर ही किया जाय । अलिक्सुन्दर यदि वितस्ता के तट पर हारा था तो सेलेउक् को उससे भी उत्तर सिन्धु के ही तट पर पराजित किया जाय ।

सेलेउक् ने दूसरे दिन सिन्धु के दूसरे तट पर चन्द्रगुप्त की सेना देखी तो उसकी समस्त आशाओं पर पानी फिर गया और उसके मन के लड्डू चूर हो गये । सोच रहा था कि वह पाटलिपुत्र तक बेरोक-टोक चला जायगा, परन्तु यह तो सिर मुण्डाते ही ओले पड़े । भारत के अन्दर झांकते ही मुंह पर तमाचा पड़ने की आशंका हो गई । फिर भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा । उसकी सेना में कानाफूसी होने लगी । सैनिकगण कहने लगे कि उनको धोखा दिया गया है । उन्हें तो बताया गया था कि मगध तक वे निर्द्वन्द्व लूटते-पाटते चले जाएंगे और वहाँ चन्द्रगुप्त से, जो कि स्वयं अभी अस्थिर है; युद्ध करना पड़ेगा । परन्तु यहाँ तो लूट दूर रही, प्रथम ही युद्ध पाले पड़ा ।

सेलेउक् ने सैनिको को बताया, 'हमारे लिए आज बड़े सौभाग्य का विषय है । महाराज अलिक्सुन्दर जब भारत में आये थे; तब उनको

अनेक युद्ध करने पड़े थे। प्रत्येक राजा से, प्रत्येक गण के अधिपति से उनका युद्ध हुआ था। एक-एक चप्पा भूमि के लिए मनों रक्त बहाना पड़ा था। परन्तु आज तो हमारे सामने केवल एक ही युद्ध है। सामने पड़ी हुई छोटी-सी सेना को जहाँ हमने धराशायी किया कि दूसरे ही क्षण समस्त भारत हमारे चरणों पर लोटता हुआ दिखाई देगा। फिर युगों-युगों तक इसकी अपार धन-राशि से हम अपने कोष भरेंगे। बस एक बार दृढ़ता से आक्रमण करने की आवश्यकता है। सिन्धु के उस पार हमारा शिकार पड़ा हुआ है। वहीं सैनिकों देवाधिदेव ज्यूस के सम्मानार्थ गोबलि का आयोजन होगा।'

'यवनपति की जय!' 'निकेतौर की जय!' से सिन्धु का पश्चिमी आकाश गूंज उठा। पूर्वी तट पर इस गूंज की एक क्षीण ध्वनि सुनाई दी। वर्षाकाल की पूर्वी हवाएं भी तो भारत के इस शत्रु को पश्चिम की ओर खदेड़ रही थीं। इस जयघोष को वे इस तट पर कैसे आने देतीं, प्रकृति भी वीरों की सहायता करती है।

सेलेउक् ने उसी प्रकार चालाकी में रात्रि के अन्धकार में सिन्धु पार करने का प्रयत्न किया जिस प्रकार अलिक्सुन्दर ने वितस्ता को पार किया था। परन्तु पूर्व अनुभव से सीख न लेने वाले मूर्ख लोग भारत में नहीं रहते थे। चन्द्रगुप्त केवल वीर एवं शूर ही न था। अपितु वह एक कुशल सेनापति भी था जो कि युद्ध विद्या की निपुणता के कारण रण के समस्त दांव-पेंच भी जानता था। उसने अपनी सेना का एक विभाग नदी के ऊपर तथा दूसरा नीचे नदी पार करके सेलेउक् की सेना के पार्श्व पर अक्रमण करने को भेज दिया। कुछ चुने हुए धनुर्धारियों को नदी के उत्तर में झाड़ियों के पीछे बिठा दिया। यहाँ

नदी के बीच में एक द्वीप था। इसी स्थान पर सेलेउक् ने नदी पार करने की योजना बनाई थी।

अन्धकार में हाथ को हाथ नहीं दिखाई देता था। सेलेउक् की सेना की एक टुकड़ी दबे पांव उक्त स्थान की ओर बढ़ती जाती थी। किनारे पर नावों का बेड़ा तैयार था। सैनिक एक-एक करके नाव पर बैठे। डांड़ की छप-छप रात्रि की शांति को भंग करने लगी। एक-एक करके नावें द्वीप के किनारे आ लगीं। सैनिकगण उतरे। उनकी एक मंजिल तय हो गई। अपनी सफलता पर विश्वास हो गया 'हिन्दू बड़े भोले होते हैं, वे केवल आमने-सामने ही लड़ना जानते हैं' एक सैनिक ने मन ही मन कहा। द्वीप से फिर बायें तट की ओर नावें चलने लगीं जैसे ही मांझी ने डांड़ का हाथ मारा कि सनसनाता हुआ तीर आया और नाविक के वक्षस्थल को बेधता हुआ पार निकल गया। नाविक पानी में गिर गया। नदी में आवाज हुई। इससे पूर्व कि सैनिकगण कुछ भी समझ पावें, सनसनाते सहस्रों तीरों से विद्ध होकर वे एक-एक करके गिरने लगे यवन सेना में हाहाकार मच गया। अन्धकार के कारण वह यह भी न जान सके कि यह बाणवर्षा कहां से और कौन कर रहा है। एक सैनिक ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया। पास ही सैनिक बोल उठा, 'उधर निशाना लगाओ।' बस दूसरे ही क्षण दोनों सैनिक चीख कर गिर पड़े। चन्द्रगुप्त के सैनिक शब्दभेदी बाण चला रहे थे। अन्धकार में भी वह अपना लक्ष्यवेध करने की योग्यता रखते थे। सिन्धु का जल लाल हो रहा था।

यवन सेना को वापस लौटने की आज्ञा हुई छाती के स्थान पर पीठ पर वार सहने का निश्चय हुआ। किनारे पर पहुंचे न पहुंचे

कि सामने से भी आक्रमण हुआ चन्द्रगुप्त की सेना नदी पार कर चुकी थी। सेलेउक् घबड़ा गया। उसने अपनी बची हुई सेना को बुलाने के लिए दूत भेजा परन्तु वह भी नदी के नीचे की ओर से पार करने वाली चन्द्रगुप्त की सेना की टुकड़ी में आक्रमणों से व्यस्त थी। यवन सैनिकों पर चारों ओर से मार पड़ने लगी। उनमें त्राहि-त्राहि मच गई।

अरुणोदय के समय पूर्व और पश्चिम दोनों ओर ही रक्ताभा दृष्टिगोचर होती थी। पश्चिम में यवनों के रक्त से धरा लाल थी तो पूर्व में क्षितिज के मुख पर भारत के सपूतों की वीरता के कारण प्रसन्नता की लाली थी। दिन निकलते आधे से अधिक यवन समाप्त हो चुके थे। दिन भर और युद्ध चला, परन्तु यवनों के पांव उखड़ चुके थे। सेलेउक् के प्रयत्न उनको न रोक पाये। अन्त में उसने सन्धि की प्रार्थना करने में ही अपनी कुशल समझी।

दोनों ओर से युद्ध रोक दिया गया। सन्धि की शर्तें तय होने लगीं। सच में तो शर्तें तय करने का कोई प्रश्न नहीं था। चन्द्रगुप्त विजयी था। वह जो कुछ भी कहता, सेलेउक् को मानना ही पड़ता। परन्तु भारत ने अपनी सफलता एवं शक्ति का कभी ऐसा नग्न परिचय नहीं दिया है। साथ ही पर्वतक की भाँति इस बार सन्धि का दिखावा करके चन्द्रगुप्त को मूर्ख भी नहीं बनाया जा सकता था। स्वयं आर्य चाणक्य ने सन्धि की शर्तें तय कीं। इसके अनुसार सेलेउक् ने प्रथम तो फिर कभी भारत पर आक्रमण न करने की प्रतिज्ञा की। अपने राज्य के चार प्रांत चन्द्रगुप्त को दिये तथा अपनी पुत्री हेलन का विवाह भी चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया। उनका दूत मेगस्थनीज भी बहुत

काल तक चन्द्रगुप्त के दरबार में रहा। इस प्रकार चन्द्रगुप्त का राज्य समस्त मध्य एशिया तक फैल गया। संगठित तथा शक्तिशाली भारत क्या कर सकता है, यह इस युद्ध ने दिखला दिया।

इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त को कुछ और छोटे-छोटे युद्ध, भारत ही में, दक्षिण में करने पड़े। चन्द्रगुप्त का उद्देश्य तो उत्तर, दक्षिण, पूर्व,पश्चिम, समस्त भारत को एक-सूत्र में बांधना था। और यह उनकी महानता है कि बारह वर्ष में ही एक विशाल साम्राज्य का निर्माण करके उन्होंने अपने इस ध्येय की पूर्ति की।

० ०

: १४ :

भारत यूनान का दामाद बना

सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य उन कतिपय इतिहास-निर्माताओं में से हैं, जिनको पग-पग पर सफलता ने वरण किया। इसका श्रेय जहां उनकी तीव्र लगन एवं अनवरत अध्यवसाय को है। वहां उनकी उस विलक्षण बुद्धि को भी है, जिसके कारण उन्होंने अपने हाथ से किसी भी अवसर को नहीं जाने दिया। शिकारी की भांति वे उचित अवसर की ताक में रहे तथा अवसर आने पर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से सर्वस्व की बाजी लगाने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं की। कूटनीति के समस्त दांव-पेंच अपने गुरु एवं सहायक आर्य चाणक्य से उन्होंने व्यावहारिक रूप में सीखे।

वे अत्यंत वीर एवं साहसी थे। उन्होंने सदैव अपनी सेना के आगे रहकर युद्ध किया। विपत्तियों में स्वयं सबसे पहले कूदे और फिर अपने सहायक देशभक्तों का आह्वान किया। अपने साहस एवं वीरता के कारण ही वे प्रथम तो अलिक्सुन्दर के विरुद्ध विद्रोह करके और फिर सेलेउक् पर विजय पाकर पंजाब, सीमांत और दक्षिण भारत की समस्त वीर जातियों से सम्मान एवं श्रद्धा पा सके। उनकी निर्भीक एवं स्वतंत्र प्रकृति का पता तो उस घटना से ही लग जाता है जिसमें वे अलिक्सुन्दर से मिले और उसे काफी जली-कटी सुनाई। इतने निर्भीक एवं स्पष्टवादी होने पर भी वे सदैव लोकप्रिय रहे। इसी लोकप्रियता के कारण मगध के सिंहासन पर बैठने के पूर्व ही वे जनता के हृदय सम्राट बन चुके थे। अपने इसी गुण के कारण मालव, क्षुद्रक जैसे गणराज्यों के नागरिकों पर, जो कि प्रजातन्त्री शासन के कारण अत्यन्त स्वतन्त्र मनोवृत्ति के थे, आधिपत्य जमा सके। उनकी लोकप्रियता तथा भारत के बड़े-बूढ़े सबके हृदय में आदर का स्थान प्राप्त करने का कारण था, उनकी निःस्वार्थ देशभक्ति। यदि अपने ही लिए उन्होंने ये सब प्रयत्न किये होते तो शायद देश उनका इतना साथ न देता।

सम्राट चन्द्रगुप्त अपने काल के एक महान विजेता भी थे परन्तु अपनी विजय के मद में मत्त होकर उन्होंने शत्रु के प्रति कभी क्रूरता का बर्ताव नहीं किया। हिंदू संस्कृति की अमूल्य निधि सहिष्णुता को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। परन्तु सहिष्णुता, दया और मैत्री के बड़े-बड़े शब्दों के मायाजाल में फँसाने वाले शत्रु की दाल भी उन्होंने नहीं गलने दी। विजय के पश्चात न तो अलिक्सुन्दर के समान उन्होंने

अविजित राजा का निर्दयतापूर्वक वध करवाया और न पर्वतक के समान विजयी होने पर भी विजित के चंगुल में फँसे। सेलेउक् को हराकर उससे उन्होंने सम्मानपूर्ण मैत्री की, परन्तु अपने देश हित और गौरव को भी आँच न आने दी।

वे एक महान विजेता ही नहीं, एक सुयोग्य शासक भी थे, साम्राज्य को दृढ़ एवं शक्तिशाली बनाने के लिये उन्होंने बहुत से कार्य किये। अपनी प्रजा एवं देशवासियों के हित में उन्होंने कोई कोर-कसर नहीं की। देश की आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, बौद्धिक सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये सब प्रकार के कार्यों का भार मौर्य शासक ने अपने ऊपर ले रखा था। साम्राज्य की इतनी सुन्दर व्यवस्था थी कि पाटलिपुत्र से संचालित सम्राट की प्रत्येक आज्ञा का पालन आज के भारतीय सम्राज्य से दुगुने विस्तृत साम्राज्य के कोने-कोने में बिना अपवाद के होता था।

सम्राट चन्द्रगुप्त स्वयं अत्यधिक परिश्रमी थे। जिस परिश्रम से उन्होंने साम्राज्य प्राप्त किया था। उसी प्रकार परिश्रम एवं दक्षतापूर्वक शासन के कर्तव्य का भी उन्होंने पालन किया। शासन के प्रत्येक विभाग का उनको ज्ञान था तथा समय-समय पर उनकी जाँच-पड़ताल भी करते रहते थे। न्यायालय में स्वयं जाकर बैठते थे तथा जनसाधारण की भी उनके पास तक पहुँच थी। निश्चय ही कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित आदर्श सम्राट का चित्र उन्हीं के आधार पर बना है। 'आदर्श सम्राट' महाकुलीन, दैवबुद्धि, दीर्घदर्शी, धार्मिक, वीर, उत्साही, दृढ़-निश्चयी एवं स्वार्थ-त्यागी होना चाहिये। उसका व्रत कर्तव्य के लिये सदा तैयार रहना है। उसका यज्ञ शासन-सम्बन्धी कार्यों को ठीक-ठीक

करना है ; सब प्रजा को समान देखना उसका पुण्य है ; प्रजा के सुख में उसका सुख, प्रजा के हित में उसका हित है ; उसको अपना नहीं किन्तु प्रजा का हित ही प्रिय होना चाहिये।' राष्ट्र की स्वतंत्रता और शक्ति के केन्द्र सम्राट चन्द्रगुप्त निश्चय ही इस आदर्श के अनुयायी थे।

सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को विजयी, उनका साम्राज्य निर्माण, उनकी सफल शासन-प्रणाली तथा प्रजा-हित के कार्यों की दृष्टि से वे न केवल भारत के ही ; वरन् संसार के सफल विजेताओं, राष्ट्र-निर्माताओं और शासकों में एक उच्च स्थान पाते हैं। इसलिये उन्हें मुद्राराक्षस में विष्णु का अवतार तक कहा है। जिस दृष्टिकोण से हमने अपने अन्य महापुरुषों और राष्ट्र-निर्माताओं को विष्णु का अवतार माना है, उसी दृष्टि से देखा जाय तो मुद्राराक्षस का कथन किसी भी प्रकार से अतिशयोक्ति नहीं कहा जा सकता।

उपसंहार

आँखों में एक स्वप्न और हृदय में महत्त्वाकांक्षा को प्रदीप्त करने वाली देशभक्ति की चिनगारी को लिये हुए दो हिन्दु युवकों ने क्या कर दिखाया; यह हमने इन पृष्ठों में देखा। दोनों ही के मन में अपनी मातृभूमि की आत्मा को जगाकर हिमालय से समुद्र-पर्यन्त सहस्रयोजनव्यापी एक चतुरन्त राज्य प्रतिष्ठापित करने की धुन समाई हुई थी; और दोनों ही थे, धुन के पक्के। मातृभूमि की इस सेवा में जहाँ एक ने अपनी मेधा को लगाया, वहाँ दूसरे ने अपनी भुजाओं को। दबाकर कुचल डालने वाली आपत्तियों के भार को एक ओर फेंककर जब-जब भारतवर्ष ने अपना मस्तक, गौरव से ऊँचा उठाया है, तब-तब देश में राष्ट्र की मूलभूत क्षात्र और ब्राह्म शक्तियों का उदय हुआ है। तभी उनके प्रतिनिधि के रूप में साथ-साथ बाल्मीकि और रामचन्द्र, व्यास और श्रीकृष्ण, याज्ञवल्क्य और जनक, रामदास और शिवाजी जैसे दो-दो महापुरुषों का अविर्भाव हुआ है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त की भी ऐसी ही एक जोड़ी थी। इन दोनों की महानता अलग-अलग नहीं आँकी जा सकती।

हमारी दृष्टि बहिर्मुखी होने के कारण विदेशियों और विधर्मियों के अत्याचारों के फलस्वरूप हुतात्मा होने वाले देशभक्तों के विद्युत-प्रकाश को ही हम देख पाते हैं। इन दोनों के जीवन का प्रत्येक क्षण देश के ही लिये व्यतीत हुआ। देश के लिये कैसे जिया जाय इसकी शिक्षा इनका प्रत्येक कार्य एवं अर्थशास्त्र का प्रत्येक शब्द दे रहा है। देशभक्तों की लम्बी परम्परा में देश की बलिवेदी पर प्राणों

को अर्पण करने वाले देशभक्तों के विद्युत प्रकाश से जहाँ दो चार पग आगे बढ़कर घनान्धकार में आँखों की स्वाभाविक शक्ति को भी खोकर हम निराश बैठ जाते हैं। वहां इस नन्दादीप के प्रकाश में अध्यवसाय, नीति एवं सातत्य का पाठ लेकर सहज अपने मार्ग पर जा सकते हैं। पाटलिपुत्र का गत वैभव एवं तक्षशिला के खण्डहर जहां एक ओर अपने विगत वैभव की याद दिलाते हैं वहाँ उस कर्मयोगी एवं अक्षुण्ण निष्ठा का भी सन्देश देते हैं जिसने उन्हें वह वैभव प्रदान किया।

हम सम्राट चन्द्रगुप्त और मन्त्री चाणक्य के पीछे देशभक्त चन्द्रगुप्त एवं देशभक्त चाणक्य को देखें। सम्राट्य एवं मंत्रित्व तो उनकी परिस्थिति विशेष की स्थिति थी; उनका साधारण स्वरूप, उनकी यथार्थता तो उनके एक भारतवासी, एक आर्य, एक हिन्दू के नाते ही जानी जा सकती है। उनको सम्राट और मन्त्री बनने की लालसा नहीं थी। उनकी तो कामना थी यवनों के चंगुल से भारत की स्वतंत्रता की रक्षा तथा वह सदैव स्वतन्त्रता का उपयोग कर सके इसके लिए उसे शक्ति-सम्पन्न बनाना। इसीलिए तो आर्य चाणक्य ने घोषणा की है, 'न त्वेवार्यस्य दास्यभावः' (आर्य कभी भी गुलाम नहीं बनाया जा सकता)।

हम नित्य प्रति महान राष्ट्र-निर्माताओं का स्मरण करते हैं और स्मरण करते हैं उन अगणित हिन्दू वीरों का जो इन दोनों हृदयों की ज्योति से ज्योतित होकर उस प्रकाश-पुन्ज को प्रकट कर सके जिसमें भारत के दुःख, दैन्य और दास्य भस्मीभूत हो गये। हम उस महान संस्कृति एवं समाज को भी आदर के साथ स्मरण करते हैं जिन्होंने

ऐसी विभूतियाँ उत्पन्न कीं। उस भारतभूमि को प्रणाम है जिसने इस महान स्फूर्ति केन्द्र को जन्म दिया।

प्रश्न १. निम्न पात्रों का चरित्र-चित्रण अपनी पुस्तक के आधार पर किन्तु अपने शब्दों में कीजिए :-

चन्द्रगुप्त, चाणक्य, पर्वतक, अमात्य राक्षस

प्रश्न २. निम्न शीर्षकों को विस्तार दीजिए :-

अपना वैभव, चाणक्य की नीति, इतिहास की सीख

प्रश्न ३. निम्न दो घटनाओं का सविस्तार वर्णन कीजिए :-

१. सैनिक चन्द्रगुप्त एवं आचार्य चाणक्य की प्रथम भेंट ।

२. राजा धनानन्द व चाणक्य की भेंट ।

प्रश्न ४. संदर्भ सहित व्याख्या कीजिये :-

तारांकित क्रमांक १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०

प्रश्न ५. 'सम्राट चन्द्रगुप्त' के लेखक पं० दीनदयाल उपाध्याय का जीवन परिचय अपने शब्दों में लिखिये ।